ओ३म्

आर्य जगत

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

…वार, 24 अगस्त 2014 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 24 अगस्त 2014 से 30 अगस्त 2014

…. चतुर्दशी ● वि० सं०–2071 ● वर्ष 79, अंक 122, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 191 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,115 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. कुकटपल्ली हैदराबाद में हवन द्वारा कार्यशाला का शुभारम्भ

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल कुकटपल्ली, हैदराबाद में सी.सी. ई. कार्यशाला से पहले हवन का आयोजन किया गया। इस अवसर पर मुख्य यजमान डी.ए.वी. स्कूल की प्रधानाचार्या श्रीमती वसंता एस.रामण तथा डी.ए.वी. विद्यालय के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया। इस शुभावसर पर संसार का श्रेष्ठतम कार्य हवन गिरि माधव शास्त्री

के ब्रह्मत्व में किया गया तथा यज्ञ के पश्चात् संगीत विभाग की ओर से भजन तथा संगीत अध्यापक वासुदेव राव जी तथा हिंदी अध्यापिका मीना कुमारी जी द्वारा भजन की प्रस्तुति को सुनकर सभी श्रोतागण प्रफुल्लित हो गए। तत् पश्चात् टीचर इंचार्ज श्रीमती उषालीला जी की देख–रेख में कार्यशाला का प्रारंभ हुआ और यह कार्यशाला छात्रों के भविष्य की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी रही।

एन डी ग्रोवर की स्मृति में हुआ प्रतिभा सम्मान समारोह

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल कनहरी हिल दयानन्द मार्ग हजारीबाग के परिसर में महात्मा नारायण दास ग्रोवर स्मृति प्रतिभा सम्मान समारोह का आयोजन किया गया।

कार्यक्रम का उद्घाटन अवकाश प्राप्त आई जी श्री दीपक वर्मा एवं बैंक ऑफ इंडिया के आंचलिक प्रबंधक अमित राय ने दीप प्रज्ज्वलन एवं वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ किया। कार्यक्रम के दौरान इंजीकनयरिंग एवं मेडिकल के अलावा 12वीं एवं 10वीं के बोर्ड परीक्षा में बेहतर प्रदर्शन करने वाले बच्चों को सम्मानित किया गया।

मुख्यातिथि श्री दीपक वर्मा ने महात्मा नारायण दास ग्रोवर के योगदान पर प्रकाश डालते हुए कहा कि पूर्वोत्तर भारत में 250 से भी अधिक विद्यालय खोलने वाले ग्रोवर साहब ने मानव सेवा एवं शिक्षा के प्रचार के लिए अपना समग्र जीवन आहूत कर दिया। हमें महात्मा नारायण दास ग्रोवर के कर्मयोगी निष्काम जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए। श्री अमित राय ने कहा कि श्रेष्ठ सफलता के लिए अन्यों से कुछ अधिक करने की ज़रूरत है। उन्होंने छात्रों को प्रेरित करते हुए कहा कि शिक्षकों के मार्गदर्शन में व कठिन परिश्रम करने से सफलता मिलेगी।

विद्यालय के प्राचार्य श्री अशोक कुमार ने कहा कि छात्र–छात्राओं के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में विद्यालय परिवार हमेशा तत्पर है। प्राचार्य महोदय ने इस शानदार परिणाम के लिए अभिभावकों एवम् शिक्षकों को विशेष रूप से बधाई दी।

ग्रीष्मावकाश दौरान लगाया गया योग शिविर

एस.डी.के.एल. डी.ए.वी.सी. सै. पब्लिक स्कूल, मानसा में 'योग शिविर' का आयोजन किया गया। इसमें 150 विद्यार्थियों तथा 90 अध्यापकों ने भाग लिया। इस योग शिविर का शुभारंभ 'हवन–यज्ञ' से किया गया जिसमें विद्यार्थियों और अध्यापकों के साथ–साथ स्थानीय प्रबंधक कमेटी के सदस्य भी उपस्थित हुए। इस शिविर में बच्चों को योगासन की जानकारी देने के अलावा जूडो कराटे का प्रशिक्षण भी दिया गया। समय–समय पर विभिन्न विद्वानों द्वारा नैतिक मूल्यों और संस्कारों की शिक्षा दी गई। अभिभावकों ने इस शिविर की बहुत सराहना की। समापन समारोह के अवसर पर जिले के मुख्य पुलिस अधीक्षक श्री भूपिन्द्र सिंह खटड़ा (पी.पी.एस.) और शहर के प्रसिद्ध समाज सेवक श्री मग्घर मल भट्ठे वाले मुख्य अतिथि के रूप में पधारे। स्कूल के प्रधानाचार्य श्री सुधीर सिंह ठाकुर जी ने इन मुख्य अतिथियों का स्वागत किया। प्रधानाचार्य जी ने भविष्य में भी इस तरह के योग शिविर लगाए जाने का विश्वास दिलाया ताकि विद्यार्थियों का उचित मानसिक शारीरिक और नैतिक विकास हो सके।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 24 अगस्त, 2014 से 30 अगस्त, 2014

हमें क्षमा करो

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः, इममध्वानं यमगाम दूरात्।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृ मर्त्यानाम्।।

ऋग् 1.31.13

ऋषिः **हिरण्यस्तूपः आङ्गिरसः**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्।**

● (**अग्ने**) हे अग्रणी तेजस्वी परमात्मन्! (**नः**) हमारी (**इमां**) इस् (**शरणि**) [व्रतलोप रूप] हिंसा को (**मीमृषः**) क्षमा करो। (**इमं**) इस (**अध्वानं**) [भ्रांत] मार्ग के अवलम्बन को भी [क्षमा करो] (**यं**) जिस पर [हम] (**दूरात्**) दूर तक (**अगाम**) चल चुके हैं। [तुम] (**सोम्यानां**) सौम्य जनों के (**आपिः**) बन्धु, (**पिता**) पिता [और] (**प्रमातिः**) शुभचिन्तक [हो], (**मर्त्यानां**) मर्त्यों को (**भूमिः**) घुमानेवाले [और] (**ऋषिकृत्**) ऋषि बना देनेवाले (**असि**) हो।

अपने जीवन में हम अन्य हिंसाएँ करते हों या न करते हों, पर व्रत–लोपरूप आत्महिंसा तो निरन्तर करते रहते हैं। कभी हम सत्य–भाषण का व्रत लेते हैं, कभी नित्य सन्ध्या–वन्दन और अग्निहोत्र करने का व्रत लेते हैं, कभी नियमित व्यायामा और प्रातः भ्रमण का व्रत लेते हैं, कभी ब्रह्मचर्य–पालन का व्रत लेते हैं, कभी वेद के स्वाध्याय और प्रातः भ्रमण का व्रत लेते हैं, कभी ब्रह्मचर्य–पालन का व्रत लेते हैं, कभी वेद के स्वाध्याय का व्रत लेते है; पर शीघ्र ही इन व्रतों को तोड़ भी देते हैं। हे परमात्मन्! तुम अग्नि हो, अग्रणी होकर सबका मार्ग–दर्शन करने वाले हो। हमारा भी मार्ग–दर्शन करो। तुम व्रत पति हो, हमें भी व्रतों पर दृढ़ रहने की शक्ति प्रदान करो। जो व्रत–भंगरूप हिंसा हम अब तक करते रहे हैं, उसके लिए हमें क्षमा करो।

व्रत–लोप के अतिरिक्त दूसरा अपराध हमने यह किया है कि हम अब तक भ्रांत राह पर चलते रहे, और उस भटकी राह पर चलते–चलते बहुत दूर निकल आये। अब यह देखकर हमारा सिर चकरा रहा है कि जितना गलत रास्ता हम पार कर चुके हैं, उससे वापिस लौटने के लिए हमें अनवरत कितना महान् प्रयास करना पड़ेगा। हे प्रकाशमय अग्निदेव! तुम्हीं प्रकाश देकर हमें उस कुमार्ग से वापिस लौटाओ। तुमसे दूर होकर जो हम भ्रांत पथ पर चल पड़े, उसके लिए भी तुम हमें क्षमा करो।

तुमसे क्षमा–याजना हम कारण नहीं कर रहे कि हम दंड से बचना चाहते हैं। हम जानते हैं कि दुष्कर्मों का दण्ड न देना रूप क्षमा तुम कभी नहीं करते हो। अतः तुम्हारे दण्ड का हम स्वागत करते हैं। व्रत–लोप और उन्मार्गगामिता का दुष्परिणाम हम पर्याप्त भोग चुके हैं और अब भी यदि कुछ भोग शेष है तो उसके लिए भी हम तैयार हैं। पर क्षमा–याजना हम भविष्य में उक्त अपराधों से बचने के लिए कर रहें हैं। क्षमा नही माँगता है जो अपने अपराध को स्वीकार करता है और उस अपराध से भविष्य में बचे रहने की जिसके मन में उत्कट चाह होती है। उसी मनोवृत्ति के के साथ हम तुम्हारे सम्मुख उपस्थिति होकर क्षमाप्रार्थी हो रहे हैं।

हे प्रभु! तुम सौम्यजनों के बन्धु, पिता और हितचिन्तक हो। तुम्हारी कृपा से हम भी सौम्य बन जाएँ। तुम 'भूमि' और 'ऋषिकृत्' हो। जैसे कुम्भकार मिट्टी को चाक पर घुमाकर उत्तमोत्तम पात्रों के रूप में परिणत कर देता है, वैसे ही तुम अपने दिव्य चक्र पर घुमाकर सामान्य मर्त्य को भी ऋषि बना देते हैं। हे देव! तुम हम पर भी अपनी कृपा बरसाओ, हम मर्त्यों को भी ऋषि बना दो।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

दो रास्ते

● महात्मा आनन्द स्वामी

चौथे दिन की कथा आरम्भ करने से पहले स्वामीजी ने पिछले दिन कही बातों को दोहराया और कहा कि यदि बेजान प्रकृति नियम के अनुसार चलती है, पशु यदि नियम के अनुसार चलते हैं तो मनुष्य क्यों नहीं चल सकता। मनुष्य ने तो सारे नियम तोड़ने का ठेका ले लिया है और इसीलिए चिल्लाता है और दुःखी होता है। स्वामी जी ने कहा कि हमारे पूर्वजों ने, योगियों और महात्माओं ने ध्यान की अवस्था में जाकर मनुष्य के शरीर के हर भाग को देखा और समझा कि शरीर को ठीक रखने के लिए क्या करना चाहिए। आज कहा कि ब्रह्मचर्य से मौत को जीता सकता है इससे मनुष्य में सहनशक्ति, स्वाभाविक खुशी, उत्साह और आत्मविश्वास उत्पन्न होता है और मनुष्य में बल आता है। ब्रह्मचर्य का पालन न करने वाले अनेक राजाओं, योद्धाओं का क्या हाल हुआ, इसकी चर्चा स्वामी जी ने की और इस प्रकार के जीवन को राजा के अनुसार बताया।

इसके बाद वरुण की बात आरम्भ की और बताया कि वरुण एक महासूर्य का नाम और आदित्य का नाम भी है। वरुण पानी को भी कहते हैं और ईश्वर की उस शक्ति को जो पानी बनाए रखती है। वरुण अर्थ श्रेष्ठ भी है। इसके आधार पर मनुष्य के भी श्रेष्ठ होने की बात कही और कहा जो परतंत्र है वह श्रेष्ठ नहीं हो सकता। स्वतंत्रता के लिए अभी हमें प्रयत्न करना होगा और पश्चिम की नकल करना छोड़ना होगा।

विचार की शक्ति महान है, इससे दुनिया बन भी सकती है और नष्ट भी हो सकती है। आज की शिक्षा पर टिप्पणी करते हुए स्वामी जी ने कहा कि आज भी वही गलत शिक्षा, गलत विचार, वही भाषा और वही वेष है और हम कहें हम स्वतंत्र हो गए, श्रेष्ठ हो गए, ये गलत होगा। स्वतंत्रता तब आएगी जब गलत और उल्टी विचारधारा बदलेगी।

अब आगे ....

विचार देनेवाली सबसे पहली यूनिवार्सिटी है–माँ। बच्चे का मन होता है साफ़, शुद्ध पवित्र। माँ उसे जो कुछ सिखाती है वह वही सीखता चला जाता है। इसलिए माँ को 'तीर्थ' कहा गया। दुनिया के इस समुद्र से पार जाने के लिए वह बच्चे को शरीर की नाव भी देती है, अच्छे विचारों के चप्पू भी,, और प्यार भरी वाणी में कहती है, ''लो मेरे बेटे! लो पार करो यह सागर।''

दूसरी यूनिवर्सिटी है–मित्र, दोस्त, सहेलियाँ। जैसे उनके विचार होंगे, वैसे ही उनकी संगत में रहनेवाले के विचार हो जायेंगे।

तीसरी यूनिवर्सिटी है यह स्कूल, कॉलेज और पाठशालाएँ।

ये तीन यूनिवर्सिटियाँ ठीक प्रकार से काम करें, अच्छे विचार दें, तब जाकर ठीक तरह से काम चलता है। परन्तु आजकल हो क्या रहा है? माताएँ बच्चे को पैदा करने के बाद समझती हैं कि उनका काम पूरा हो गया। बच्चे को किसी आया–माया–दाया के हवाले करके वे सिनेमा देखती हैं; क्लबों और जलसों में जाती हैं। ऐसी माताएँ बच्चे को आखिर क्या विचार देंगी? याद करो! बचपन में जो विचार बच्चे को दिये जाते हैं, उसके दिल में बिठा दिये जाते हैं, वे जीवन–भर उसके साथ रहते हैं। छोटी आयु में बच्चों को जो बात सिखा दी जाती है उसे वे आसानी से भूलते नहीं। कई भाई कहते हैं कि हमने बच्चे को अच्छे विचार दिये थे, इसके बावजूद वह बिगड़ गया। तो क्यों बिगड़ गया मेरे भाई? इसलिए कि आपने यह ध्यान नहीं दिया कि बच्चे की संगत कैसी है, उसके मित्र और साथी कैसे हैं। साथी और मित्र बुरे हैं तो बिगड़ेगा नहीं तो और क्या होगा?

विचार की शक्ति से बड़ी कोई शक्ति नहीं

'संसारदीर्घरोगस्य सुविचारो महौषधम्।'

संसार का यह लम्बा रोग है न, एक–दो दिन, एक–दो महीने या एक–दो वर्ष चलनेवाला रोग नहीं। अतः करोड़ों, अर्बों वर्षों तक चलने–वाला रोग–पैदा होना, मरना, फिर पैदा होना, फिर मरना–यह चक्कर जो कहीं समाप्त होता हुआ मालूम नहीं होता, यही तो संसार है। यही ऐसा रोग है जिसकी दवा आसानी से मिलती नहीं। परन्तु दवा है क्या?

thearyasamaj.org

'सुविचारो महौषधम्।'

अच्छे विचार, ठीक विचार–यही इस रोग की ओषधि है, 'महा ओषधि' हैं। और ये अच्छे विचार क्या हैं?–कौन हूँ मैं?–कहाँ से आया हूँ?–किसलिए आया हूँ?–कहाँ जाना है मुझे?–यह संसार किसका है?–कौन इसे चलाने वाला है? ऐसे प्रश्नों को सोचना, इनका उत्तर ढूँढने के बाद अपने जीवन को इसके अनुसार ढालने का दृढ़ निश्चय करना।

ये विचार ही इस संसार–रूपी बीमारी का इलाज है। विचार पवित्र हों तो आदमी स्वयमेव ठीक रास्ते पर चलता है।

यहाँ एक बात कहना चाहता हूँ। महर्षि दयानन्द ने जब अभी अपना काम आरम्भ नहीं किया था और 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के शासक इस देश में अत्याचार करते हुए सारे देश में बाढ़ की तरह आगे बढ़ रहे थे, तो लोग दुःखी थे। बार–बार सोचते थे कि इस विदेशी राज्य से मुक्ति कैसे मिले? तब कानपुर के अन्दर नाना साहब स्वामी दयानन्द को मिलने आये। उस समय नाना साहब की आयु उतनी ही थी जितनी स्वामी दयानन्द की। दोनों समान अवस्था के थे–दोनों नौजवान। नाना साहब ने स्वामी जी को यह काम सौंपा कि वह स्वतन्त्रता चाहने–वाले भिन्न–भिन्न लोगों में तालमेल पैदा करें, उन्हें एक–दूसरे के निकट लाएँ। उन्हें बताएँ कि देश की नैय्या परतन्त्रता की मँझधार में आ फँसी है, इसे बाहर निकालने और फिर से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सबको मिलकर काम करना चाहिए। स्वामी दयानन्द ने यह काम आरम्भ किया। मराठों और राजपूतों के एक भाग में रहनेवालों को दूसरे भाग में रहनेवालों के निकट लाने का यत्न करने लगे। परन्तु उन्होंने देखा कि इस लोगों के तो विचार ही आपस में नहीं मिलते कहीं जातियों का प्रश्न, कहीं बिरादरियों का, कहीं छुआछूत का, कहीं छोटेपन और बड़ेपन का। उन्होंने देखा कि लोग एक–दूसरे के हाथ का बना खाना नहीं खाते; अपनी जातिवाले के सिवाय किसी दूसरी जातिवाले को अपना नेता या सरकार मानने को तैयार नहीं। तीन वर्ष तक गंगोत्री से गंगासागर तक, राजस्थान से रामेश्वर तक घूमते फिरे कि किसी तरह सब लोगों को मिलाकर काम करने की प्रेरणा दे सकें। परन्तु निराश हो गए। 1857 के पहले स्वतन्त्रता–युद्ध में बलिदान तो बहुत दिये गए, परन्तु इन बलिदानों के बावजूद यह युद्ध असफल हुआ तो इसलिए कि विचार एक नहीं थे।

और ये विचार किस प्रकार एक होंगे? इसे स्वामी दयानन्द जी भी उस समय समझ नहीं पाये थे। अभी वह उस गुरू के पास पहुँच नहीं पाये थे जो आँख न होने पर भी दूर तक देखता था, जिसे पता था कि वह एक विचारधारा जिससे सारे देश का कल्याण हो सकता है, कौन–सी है। यह गुरू थे महर्षि विरजानन्द। अब इस सचाई से पर्दा उठ रहा है कि वह भी सन् सत्तावन के इस संघर्ष में सम्मिलित थे। स्वामी दयानन्द से भी अधिक शामिल थे। अभी पिछले वर्ष जिला मुज़फ़्फ़र नगर की एक ग्राम–पंचायत के एक प्रतिनिधि का 114 वर्ष पुराना रोज़नामचा (दैनन्दिनी) मिला है जिसमें उसने मथुरा में होने वाली ऐसी पंचायत वर्णन किया है, जिसमें सैकड़ो पंचायतों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। उस प्रतिनिधि का नाम था–मीर मुश्ताक़ मीरासी अपने रोजनामचा में वह लिखता है–

"इस इकट्ठ में हिन्दू, मुसलमान और दूसरे मजहब के लोगों ने भाग लिया। पंचायत में एक नाबीना (प्रज्ञाचक्षु) हिन्दु दरवेश (साधु) को लाया गया जो एक पालकी में बैठकर आये थे। सब लोगों ने उनका आदर किया। उन्हें एक चौकी पर बिठाया गया। हिन्दु–मुसलमान फ़कीरों (साधुओं) ने उनको कदमबोसी की (चरण छुए)। नाना साहब, अजीमुल्लाह खान, रंग बाबू और शाहनशाह बहादुरशाह जफर के शहजादे (राजकुमार) ने उनको सोने की अशर्फियाँ पेश कीं। इसके बाद एक हिन्दु और एक मुसलमान फ़कीर (साधु) ने कहा कि यह हमारे आका (स्वामी) हैं। इनकी जबाने–मुबारिक (पवित्र वाणी) से जो तक़रीर (व्याख्यान) होगी उसे सब लोग तसल्ली से सुनें। इससे देश को बहुत लाभ होगा।"

उस महात्मा ने अपने व्याख्यान में बहुत–कुछ कहा। परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात कही यह कि–

गुलामी (परतन्त्रता) दोजख (नरक) है–
आजादी (स्वतन्त्रता) जन्नत (स्वग) है।

इस पंचायत में नाना साहब, अजीमुल्लाह खान और बहादुरशाह जफ़र के शहज़ादे (राजकुमार) का शामिल (सम्मिलित) होना इस बात का सबूत (प्रमाण) है कि पंचायत लोगों को उस महाक्रान्ति के लिए तैयार करने के वास्ते एकत्र की गई, जिसके लिए गुप्त तैयारियाँ हो रही थीं। कोई भी आदमी जिसकी आँखें खुली हैं, देख सकता है कि यह वृद्ध प्रज्ञाचक्षु और फ़कीर महात्मा महर्षि विरजानन्द जी के सिवा कोई दूसरा नहीं हो सकता। इस प्रकार महर्षि विरजानन्द सन् सत्तावन के महासंघर्ष में काम कर रहे थे। इस संघर्ष के सम्बन्ध में रिपोर्टें तैयार की गई और जो पुस्तकें लिखी गईं उनमें एक 'प्रभावशाली बाबाजी' का वर्णन आता है, जिसे उस समय के अंग्रेज़ शासक इस विशाल संघर्ष की आत्मा समझते थे, परन्तु जिसे वे कभी गिरफ्तार नहीं कर सके। हो सकता है कि 'प्रभावशाली बाबाजी' महर्षि विरजानन्द ही थे जो संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, फारसी, कई भाषाएँ जानते थे; जो साधु होने के कारण हर जगह पहुँच सकते थे और जिनपर सूरदास होने के कारण कोई शक नहीं कर सकता था।

परन्तु महर्षि दयानन्द की तरह महर्षि विरजानन्द ने भी देखा, जब तक लोगों की विचारधारा न बदले तब तक स्वतन्त्रता का संघर्ष सफल नहीं होगा। अपने विशाल ज्ञान और अपने महान् पाण्डित्य के कारण उन्होंने यह भी समझा कि यह विचारधारा क्या होनी चाहिए। स्वतन्त्रता–संग्राम की असफलता के बाद स्वामी दयानन्द जी उनके पास पहुँचे तो महर्षि विरजानन्द जी ने निर्णय किया कि यही मनुष्य है जो इस ठीक विचारधारा को लोगों तक पहुँचा सकता है। स्वामी दयानन्द उस समय 34 वर्ष के थे, महर्षि विरजानन्द 51 वर्ष के। और वृद्ध ने युवक को अपना सारा ज्ञान देकर कहा, 'अब जाओ! जगा दो इस देश को!'

महर्षि दयानन्द ने पूना में जो भाषण दिये, उनमें से एक भाषण में उन्होंने कहा– "मैं वेदों के आधार पर हवाई जहाज़ बनवा सकता हूँ। वह विधि बता सकता हूँ जिससे आकाश में उड़नेवाली मशीन तैयार हो जाय। परन्तु यह मेरा काम नहीं। मैं लोगों के विचार बदलना चाहता हूँ। जब तक लोग ठीक विचारधारा को नहीं अपनायेंगे तब तक केवल मशीन से कुछ होनेवाला नहीं है।"

और बिल्कुल सच कहा महर्षि ने। विचार ठीक न हो, भावना ठीक न हो, नीयत अच्छी न हो तो हवाई जहाज फूल नहीं, बम बरसाने लगते हैं। यह आज से लगभग सौ वर्ष पहले की बात है। उस समय हवाई जहाज़ बने नहीं थे। इसके बावजूद महर्षि ने कहा, हवाई जहाजों को बनाने से पहले लोगों की विचारधारा को बदलना ज़रूरी है।

और याद रखो मेरे भाई! जब तक विचार पवित्र नहीं होते, जब तक गलत विचारधारा को बदलकर ठीक विचार को जारी नहीं किया जाता, तब तक विज्ञान की उन्नति बेकार है। हवाई जहाज़ बनते हैं, उनसे मौत बरसती है। सड़कें बनती हैं, उनपर सती–साध्वी स्त्रियों के लिए अकेले जाना असम्भव हो जाता है। विचारधारा न बदले तो याद रखो, लाख स्वराज्य प्राप्त कर लो, शान्ति कभी मिलेगी नहीं। शान्ति आएगी कैसे? विचार तो वही हैं–छोटे, खोटे, गन्दे,विनाश की ओर ले जाने वाले। वही स्वार्थ, वही अभिमान, वही अहंकार, वही लालच, वही हर बात में 'मैं–मैं–मैं'। इस प्रकार काम चलेगा नहीं। विचारों को बदलना, अच्छे विचारों को मन में जगाना बहुत जरूरी है। तभी ठीक अर्थों में मनुष्य स्वतन्त्र होता है, श्रेष्ठ बनता है।

अब प्रश्न है कि विचार ठीक कैसे होंगे? इसका सीधा–सा उत्तर है–परतन्त्रता का फन्दा तोड़ने से, स्वतन्त्र होने से। स्वतन्त्र आदमी ही 'श्रेष्ठ होता है। उसके विचार कभी बुरे नहीं हो सकते।

परन्तु किसी की परतन्त्रता का फन्दा तोड़ने से ही क्या आदमी स्वतन्त्र होता है? केवल विदेशी राज्य की परतन्त्रता का फन्दा? नहीं मेरे भाई! इन इन्द्रियों की दासता का फन्दा तोड़ने से मनुष्य सही अर्थों में स्वतन्त्र होता है और श्रेष्ठ बनता है। हमने इस बात को समझा नहीं। विदेशी राज्य की गुलामी से तो छुटकारा पा लिया। पिछले 22 वर्षों में हम इन्द्रियों के पहले से भी अधिक–अधीन हो गए। रेडियो–स्टेशनों पर गीत अधिक हो गए। गन्दी फ़िल्मों की गिनती अधिक हो गई। सिनेमा–घर ज़्यादा हो गए। नाच–रंग की महफ़िलें (सभाएँ) अधिक हो गईं। 'कल्चरल प्रोग्राम' बहुत बढ़ गये, रेस्तराँ और होटल ज़्यादा हो गए, 'नाइट क्लबें' हर नगर में पहुँच गईं। शराब की खपत गढ़ गई। सिगरेट की खपत बढ़ गई। और फिर फ़ैमिली प्लानिंग की गोलियाँ भी हैं। खाओ और अपना सर्वनाश करते जाओ। यह आजादी, यह स्वतन्त्रता कैसी? यह तो पहले से भी बदतर गुलामी (परतन्त्रता) आ गई है। कई लोग पूछते हैं कि–क्यों जी, पहले के लोग सुखी क्यों थे? आज वे सुखी क्यों नहीं? इसका सीधा उत्तर यह है कि पहले लोग 'इन्द्र' की, ईश्वर की पूजा करते थे। अब इन्द्रियों की पूजा करते हैं और इन्द्रियों की पूजा ऐसी है जो थोड़ी देर के लिए सुख देती है ज़रूर, परन्तु इस सुख के पीछे दुःख छुपा रहता है, जैसे थोड़े–से फूलों के नीचे ज़हरीला साँप फन उठाए बैठा हो। इन्द्रियों की पूजा करने वाले को सुख कभी मिलता नहीं। इन्द्रियाँ ले जाती हैं 'प्रेय मार्ग' की और इस मार्ग का अन्त महानाश है। आजकल कमज़ोर, नालायक, कमअक्ल, रोगी बच्चे क्यों पैदा होते हैं? इसलिए कि उनके माँ–बाप ने ब्रह्मचर्य का ठीक प्रकार से पालन नहीं किया। ब्रह्मचारी माता–पिता की सन्तान बलवान् होती है–ज़्यादा अक्लवाली, ज़्यादा सदाचारी, ज़्यादा सुशील, ज़्यादा आज्ञाकारी। माँ–बाप ग़लत रास्ते पर चलें तो बच्चे इन ग़लतियों (भूलों) का भंडार बन जायेंगे। एक माँ ने मुझे कहा–"स्वामी जी, मेरा बच्चा रोता है।" मैंने कहा–"और तू बहुत हँसती है न? अरे तू भी तो रो रही है। बचपन में बहुत रोती होगी, इसलिए अब तेरा बच्चा रोता है।"

नहीं बाबा! इन इन्द्रियों के पीछे नहीं चलो। ये घोड़े हैं तुम्हारे, इन्हे वश में रखो। इन्हे अपनी इच्छानुसार चलाओ, नहीं तो ये तुम्हें किसी गढ़े में ले–जा के पटक देंगे।

और आपको पता है कि सुख–दुःख का अर्थ क्या है?

शेष अगले अंक में....

परमेश्वर का मुख्य नाम 'ओ३म्'

● डा. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

1. 'अवति' इति ओम्–अर्थात सबका रक्षक होने से परमात्मा का नाम ओम् (उच्चारण में ओ३म् भी) है।

2. 'ओ३म्' परमात्मा का निज नाम है। परमात्मा के अन्य सभी नाम गुण–कर्म–स्वभावनिमित्तक हैं। 'ओ३म्' ही अकेला परमात्मा का निज नाम है। 'ओ३म्' नाम सर्वश्रेष्ठ है, जैसे किसी व्यक्ति का निज नाम मुख्य होता है अन्य नाम गुण या सम्बन्ध के निमित्त से होते हैं और वे गौण होते हैं।

3. वेदादि सत्यशास्त्रों में परमात्मा के इसी 'ओ३म्' नाम को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है और सर्वाधिक चर्चा, वर्णन या वैशिष्ट्य इसी 'ओ३म्' नाम का है। तद्यथा–

(I) **ओ३म् खं ब्रह्म** (यजुर्वेद 40.17.)

(II) **ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्** (ऋ.1.164.39.)
इस ऋचा में 'ओम्' का संकेत किया गया है, ऐसा माना जाता है।

(III) **सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति, ओम् इत्येतत्।।** (कठोपनिषद् 2.15)

(IV) **ओमित्येतदक्षरं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।** (माण्डूक्योपनिषद्)

(V) **ओमिति ब्रह्म। ओमितीदं सर्वम्** (तैत्तिरीयोपनिषद् 1.8.)

(VI) **तस्य वाचकः प्रणवः** (योग दर्शन)

(VII) **ओमितयेदक्षरम् उद्गीथमुपासीत।** (छन्दोग्य. 1.11)

(VII) **ओंकारः सर्वमाप्नोतीत्यर्थः** (गोपथ ब्राह्मण अ. भा. प्र.1.36)

इत्यादि अनेक प्रमाण हैं। अन्य मत–मतान्तरों में भी ओंकार की महिमा तथा 'ओम्' से परिवर्तित ईश्वर–नाम मौजूद है। इसकी विस्तृत मीमांसा 'ओंकार निर्णय' (लेखक–पं. शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ) ग्रन्थ में की गई है।

4. अ–उ–म्–इन अक्षरों का समुदाय है– ओम्। इस अकार, उकार और मकार का विशेष अभिप्राय है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्रथम समुल्लास (सत्यार्थ प्रकाश) में अकार, उकार, मकार की व्याख्या की है।

अकार–विराट् अग्नि, विश्व आदि
उकार–हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस् आदि
मकार–ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ आदि

इन अर्थों का औचित्य माण्डूक्योपनिषद् में मिलता है। स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती का मत है कि "परमात्मा के नामों के जहाँ त्रिक् मिल जाते हैं ऐसा विभाजन करना सुगम होता है। कुछ परिचित त्रिक् हैं–

I. अग्नि–वायु–आदित्य
II. भूः – भुवः – स्वः
III. इन्द्र–मित्र–वरूण

इस प्रकार के त्रिकों को लेकर क्रमशः अकार–उकार–मकार के अन्तर्गत इन नामों को स्थान दिया जा सकता है।"

5. अ–उ–म् ये तीन अक्षर मानवीय ध्वन्यात्मक वर्णमाला की चरमसीमा हैं, कण्ठ से ओष्ठ तक हमें अद्भुत वाणी–तन्त्र प्रभु ने प्रदान किया है। कण्ठ से सबसे पहला बोला जानेवाला अक्षर **अ** है (स्वर और व्यञ्जन की सम्पूर्ण सूची में), अन्तिम विशुद्ध स्वर ओष्ठ से बोला जानेवाला **उ** है, और सम्पूर्ण वर्णमाला का अन्तिम व्यञ्जन अक्षर **म्** है। अ–उ–म् में इस प्रकार समस्त वर्णमाला समाविष्ट है (भाषा कोई भी हो पर उनके समस्त वर्ण अ–उ–म् की सीमाओं के अन्तर्गत हैं)। हम कह सकते हैं–

'ओमित्येतद् सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।'

6. प्रतीकभाषा (Symbolic Language) का सबसे प्राचीन उदाहरण ओम् है–

अ–उ–म् ये अक्षर परमात्मा के विभिन्न गुण–कार्य–स्वभावों के प्रतीक हैं। प्रतीक भाषा का विस्तार पाणिनीय सूत्रों के प्रत्याहारों में हुआ, फिर पिंगल के छन्दःशास्त्र में और फिर गणितशास्त्र। आधुनिक रसायन, गणित, भौतिक आदि की भाषा प्रतीकों की भाषा है।

7. ओम् शब्द परमात्मा का निजी नाम है, किन्तु व्याकरण की दृष्टि से यह शब्द नाम या संज्ञा (Noun) नहीं है यह अव्यय है। अव्ययों के न तो कारकों में रूप चलते हैं, न वचनों में न क्रिया की तरह कालों में। अव्यय ब्रह्म का वाचक प्रमुख नाम 'ओ३म्' भी अव्यय है। 'ईश्वर ने सृष्टि बनाई' यह वाक्य शुद्ध है पर ओम् ने सृष्टि बनाई, ऐसा वाक्य नहीं बन सकता। **क्योंकि ओम् शब्द का रूपान्तर कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान आदि कारकों में नहीं हो सकता।** हम अपने बच्चे का नाम ओम् नहीं रख सकते क्योंकि 'ओम्' का कर्त्ता सम्बोधन आदि रूप सम्भव नहीं है। अतः परमात्मा के अतिरिक्त और किसी का नाम ओम् नहीं हो सकता। इसलिए भी ओ३म् परमात्मा का मुख्य नाम है।

8. **'ओम्' शब्द के रूप नहीं चलते इसीलिए संस्कृत भाषा में इस शब्द का प्रयोग करने पर ओम् के आगे 'इति' लगाकर–वाक्य बनाते हैं–**

ओम् इति एतद् अक्षरम्। संग्रहेण तत् ब्रवीमि–ओम् इत्येतत्।

वाक्यों में प्रयोग की सुविधा के लिए ऋषियों ने ओ३म् के दो पर्यायवाची शब्दों का और प्रयोग किया–1. प्रणव, 2. उद्गीथ। सदा नवीन रहने से 'सनातन' परमात्मा का नाम 'प्रणव' है। सामगान में उच्च स्वर से गाने के कारण इसे उद्गीथ भी कहते हैं। वेद और उपनिषद् के प्राचीन युग से चले आ रहे इस ओम् नाम की महत्ता का ही यह परिचायक है।

9. इसी नाम के जप का विधान शास्त्रों में है। **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** यह महर्षि पतञ्जलि का सूत्र है। अर्थ के साथ के साथ ओम् का जप करना 'योग दर्शन' की परिभाषा में स्वाध्याय है। प्राचीन ऋषि–मुनियों तथा आचार्यो ने इसी ओम् नाम के जप का विधान किया है **'जजाप परमं जपम्'** यह श्लोक 'वाल्मीकि रामायण' में आता है अर्थात् राम ने परम जप 'ओ३म्' का जप किया।

पाणिनि ने अपने दो सूत्रों–

1. **ओमभ्यादाने (8.2.87)**, 2. **प्रणवष्टेः (8.2.89)** द्वारा यह विधान किया है कि वेदमन्त्र के प्रारम्भ में यदि 'ओम्' बोला जाए तो उसे प्लुत– 'ओ३म्' ही बोलना चाहिए। इसी प्रकार अन्त में भी यदि 'ओम्' बोलना है तो प्लुत 'ओ३म्' का ही उच्चारण होगा। वेदमन्त्रों के साथ ओ३म् के अतिरिक्त अन्य प्रभु नाम नहीं बोला जाता है। वैष्णवों द्वारा 'हरि–ओम्' बोलना व्याकरणशास्त्र तथा प्राचीन मर्यादा के प्रतिकूल है।

इसीलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्पष्ट लिखा है–

"एतच्च सर्वोत्तमं प्रसिद्धतमं परब्रह्मणो नामास्ति।
एतेनैकेनैव नाम्ना परमेश्वरस्यानेकानि नामान्यागच्छन्तीति वेद्यम्।।"

यह (ओ३म्) परमेश्वर के सब नामों में सर्वोत्तम तथा प्रसिद्ध नाम है इसमें परमेश्वर के सभी नामों के अर्थ आ जाते हैं (पञ्चमहायज्ञविधिः, पृ. 23)।

ओ३म् इन्द्र शिव

1. ओ३म् परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है तथा निज नाम है। इन्द्र और शिव परमात्मा के गौणिक, (गुणनिमित्तक) कार्मिक (कर्मनिमित्तक) तथा स्वाभाविक (स्वभावनिमित्तक) नाम हैं।

2. ओ३म् केवल परमात्मा का ही नाम हो सकता है अव्यय होने से। इन्द्र, शिव आदि नाम व्यक्ति विशेष के भी हो सकते हैं। पुराने इतिहास में भी देवताओं के राजा का नाम 'इन्द्र' तथा कैलासवासी पार्वती के पति महादेव शंकर का नाम भी 'शिव' प्रसिद्ध रहा है।

3. ओ३म् इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम गृहीत हो जाते हैं। जैसे अकार से विराट् अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि।

परन्तु इन्द्र और शिव से धात्वर्थ के आधार पर परमात्मा के एक–एक गुण–कर्म का ही बोध होता है।

धात्वर्थ के आधार पर इन्द्र का अर्थ (ईश्वर–नामों में) जैसे– 'इदि परमैश्वर्ये' धातु से 'रन्' प्रत्यय करने से 'इन्द्र' शब्द सिद्ध होता है। **'य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः'** जो अखिल ऐश्वर्ययुक्त है, इससे उस परमात्मा का नाम 'इन्द्र' है।

ईश्वर नामों में शिव का अर्थ (धात्वर्थ के आधार पर) 'बहुलमेतन्निदर्शनम्' (धातुपाठ) के आधार पर 'शिवु कल्याणे' धातु से 'शिव' शब्द सिद्ध होता है। परमेश्वर कल्याण स्वरूप तथा कल्याण करने वाला है, इसीलिए उसका नाम 'शिव' है।

धात्वर्थ के आधार पर ओ३म् का अर्थ– 'अवति' इति ओम् (सत्यार्थप्रकाश, प्रथम समुल्लास)। **सबका रक्षक होने से परमात्मा का नाम ओम् है।**

रणवीर धनञ्जय
स्नातकोत्तर महाविद्यालय अमेठी

टंकारा में चिन्तन शिविर नये संकल्प के साथ सम्पन्न

गुजरात की आर्यसमाजों के सदस्यों में आध्यात्मिक, सैद्धान्तिक व सांगठनिक चेतना के उद्देश्य से पिछले वर्ष से चिन्तन शिविरों का प्रारम्भ किया गया है। उसी क्रम का द्वितीय शिविर गत दिनांक 20–12–22 जून 2014 को आयोजित किया गया। शिविर स्थान ऋषि जन्म भूमि स्थित महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा रखा गया था।

शिविर में निम्न विषयों का प्रशिक्षण दिया गया। (1) आर्यसमाज के नियम व उपनियम और आर्यसमाज के पदाधिकारियों की जिम्मेदारियाँ। (2) वैदिक धर्म के सार्वभौमिक व सार्वकालिक सिद्धान्त। (3) आर्यसमाज व उसके क्रिया कलापों में अनुशासन। (4) पंच महायज्ञ अर्थात् कर्त्तव्य पालन। (5) बालकों व युवकों को आर्यसमाज की ओर प्रेरित करने के उपाय। (6) आर्यसमाज के सेवा प्रकल्प।

शिविरार्थियों का प्रशिक्षण आरम्भ होने से पूर्व उनकी पूर्वज्ञान कसौटी ली गई। इसी प्रकार शिविरान्त कसौटी भी ली गई। शिविरार्थियों को तत्काल विषय देकर उनकी सैद्धान्तिक जानकारी की भी कसौटी ली गई। इस से उनकी निर्णय शक्ति का भी परिचय प्राप्त हुआ।

पूरे शिविर में मार्गदर्शन के लिए आचार्य सत्यजित् जी आर्य (रोजड), आचार्य रामदेव शास्त्री (टंकारा), पं. रामस्वरूपजी (अजमेर), डा. कमलेश कुमार शास्त्री (अहमदाबाद), श्री प्रकाश आर्य (मन्त्री, सार्व.सभा) श्री वाचोनिधि आर्य (गांधीधाम) एवं प्रान्तीय सभा के प्रधान श्री सुरेशचन्द्रजी अग्रवाल ने अपना समयदान दिया।

thearyasamaj.org

उत्कृष्ट शङ्का समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका–बहुत जन्मों के बाद अच्छे कर्म करने से मनुष्य जन्म मिलता है। धरती पर अब बहुत कम मात्रा में अच्छे कर्म हो रहे हैं, बुरे कर्म ज्यादा हो रहे हैं, इस हिसाब से मनुष्यों की बस्ती (संख्या) कम होनी चाहिए, लकिन मानव बस्ती तो बढ़ती जा रही है?

समाधान – प्रश्न है कि मुनष्यों की संख्या क्यों बढ़ती जा रही है, जबकि अच्छे काम घट रहे हैं, बुरे काम ज़्यादा हो रहे हैं। उत्तर समझने के लिए:–

● अच्छा यह बताइए कि, मनुष्यों की संख्या अधिक है या दूसरे कीड़े–मकोड़ों की? उत्तर होगा–कीड़े–मकोड़ों की। इससे बात साफ है, अच्छे कर्म कम होते हैं, इसलिए मनुष्य कम हैं। बुरे काम ज्यादा होते है, इसलिए संसार में कीड़े–मकोड़े, पशु–पक्षी ज्यादा हैं। एक तो यह मोटी–मोटी बात है।

● अब यह बताइए कि, पिछले पचास सालों में मनुष्यों की जो संख्या बढ़ी, यह सामान्य मजदूर गरीबों के घर में बढ़ी या आई.ए.एस, आई.पी.एस ऑफिसरों के घर में बढ़ी? यह तो सामान्य परिवारों में बढ़ी। इसका मतलब निकला कि –पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़े के शरीर से लौटकर जीवात्मा आ रहे हैं। इसलिए सामान्य मजदूर गरीबों के घर में मनुष्यों की संख्या बढ़ रही है।

संख्या अच्छे कर्मों के कारण नहीं बढ़ रही। पाप–दंड भोग करके, निपटा करके, अब उनका मनुष्य बनने का नंबर आया। इसलिए वो लौटकर मनुष्य बन रहे हैं। इन मनुष्यों की संख्या बढ़ रही है।

● इस समय जो पाप कर रहे हैं, वो मरने के बाद यहाँ से वहाँ ट्रांसफर हो रहे हैं, कुत्ते–बिल्ली में, गाय–घोड़े के शरीर में। संसार के लोगों को यह सत्य दिखता नहीं। इसलिए लोग पाप करना छोड़ते नहीं।

लोग तो यह समझते हैं कि, हरिद्वार में जाओ, गंगा जी में स्नान करो तो सारे पाप खत्म हो जाएंगे। इसलिए लोग खूब पाप करते हैं। अगर उनको समझ में आ जाए कि भगवान छोड़ेगा नहीं, कुत्ता–बिल्ली बनाएगा, दंड देगा, माफ नहीं करेगा तो वो पाप करना बंद कर देंगे।

● मैंने एक नियम बताया था– 'दंड के बिना कोई सुधरता नही है।' अगर दंड दिखता है, तो व्यक्ति सुधरेगा। देखिए, यह बिजली का तार है। क्या बिजली के तार को आप छुएंगे? क्यों नहीं छुएंगे? साफ दंड दिख रहा है न, कि छूते ही दंड मिलेगा। जब दंड दिख रहा है तो आप नहीं छुएंगे। और ऐसे ही अगर यह दंड भी दिखने लग जाए कि हम झूठ, छल–कपट, चोरी, बेईमानी करेंगे तो भगवान कुत्ता, साँप, बिच्छू, भेड़िया आदि बना देगा। तो आप पाप क्यों करेंगे? कोई भी नहीं करेगा। सब सीधे हो जाएंगे।, सब सुधर जाएंगे। तो संख्या के बढ़ने–घटने का यह कारण है।

शंका–क्या सृष्टि में जीवों की जनसंख्या निश्चित है। संसार में मानव, पशुओं, पक्षियों, जीव–जन्तुओं की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है तो एक बार संख्या निश्चित होती है तो बढ़ती कैसे है?

समाधान – यह जो प्रश्न उठाया है कि सबकी संख्या बढ़ती जा रही है, यह बात ठीक नहीं है। कारण कि:–

● आपके पास इन प्राणियों की संख्या का कोई हिसाब–किताब नहीं है। आप बता सकते हैं, दिल्ली में एक दिन में कितने मच्छर मरते हैं और कितने नए पैदा होते हैं? मच्छरों की संख्या का पता नहीं, और यहाँ तो हजारों, लाखों योनियाँ हैं।

● **आत्माओं की संख्या निश्चित है।** यह तो आप मानते हैं कि आत्माएँ न पैदा होती हैं, न मरती है अगर आत्माएँ नई पैदा होने लग जाएं तो आत्माओं की संख्या बढ़नी शुरू हो जाएगी। जब नई आत्मा पैदा होगी तो संख्या बढ़ेगी। और जितनी आत्माएँ हैं, अगर उनमें से कुछ मरनी शुरु हो जाएं, तो घटने लगेंगी।

"जब आत्मा पैदा नहीं होती तो आत्माओं की संख्या बढ़ेगी नहीं, और जब आत्मा मरती नहीं तो संख्या घटेगी नहीं। इसलिए आत्माओं की संख्या तो उतनी ही रहेगी, एक कम नहीं होगी, एक बढ़ेगी भी नहीं।"

● रही बात शरीरों की। शरीर पैदा भी होते हैं और मरते भी हैं। इसलिए शरीर कभी घट जाते हैं, कभी बढ़ जाते हैं। एक जगह संख्या बढ़ रही है तो समझ लेना, दूसरी जगह जरूर घट रही है।

आत्माएँ तो उतनी ही हैं। एक आत्मा एक समय में छह शरीरों में तो रह नहीं सकती। **कभी आत्माएँ पशु, पक्षियों की योनियों में से मर करके अर्थात् शरीर छोड़ करके मनुष्य शरीर में आ जाती हैं तो मनुष्यों की संख्या बढ़ जाती है। और मनुष्य वाली आत्मा मनुष्य शरीर छोड़ करके पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़े में चली जाती है तो इधर मनुष्य घट जाते हैं और उधर पशु –पक्षी, बैक्टीरिया आदि बढ़ जाते हैं। पूरा हिसाब रखना हमारे बस की बात नहीं है। केवल ईश्वर जानता है।**

● मोक्ष मिल जाएगा तो आत्मा मोक्ष में चली जाएगी। आत्मा मरेगी फिर भी नहीं। मोक्ष में उसकी सत्ता (अस्तित्व) बनी रहेगी और जब मोक्ष का समय पूरा हो जाएगा, फिर आत्मा लौट के वापस संसार में जन्म लेगी।

● आत्माएं हमारी गिनती से तो अनंत हैं। हम पूरा नहीं गिन पाएंगे लेकिन वास्तव में आत्मा की संख्या निश्चित है। कोई न कोई एक फिगर निश्चित है। अल्पज्ञ होने के कारण उसे हम नहीं जान सकते।

● ईश्वर सर्वज्ञ है औ वह आत्मा की संख्या जानता है, और ईश्वर सबका हिसाब रखता है।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ वन, गुजरात

विचारों की उथल–पुथल के मध्य क्षणिक मौन

● रमेश चन्द्र पाहूजा

किसी एक समय, हमारे मन में केवल एक विचार होता है। हमारा अगला विचार क्या होगा, कोई नहीं जानता,। परन्तु जब भी अगला विचार आता है उसका पिछले विचार से कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य होता है। इस सम्बन्ध में कोई तर्क हो सकता है और नहीं भी। यह सम्बन्ध सीधा–2 भी हो सकता है अन्यथा भी। यह एक शब्द लय (rhyme), एक घटना, एक दृश्य, पूर्व जन्मों के संस्कार आदि के रूप में हो सकता है। परन्तु यह तो सत्य है कि किसी भी एक समय, हमारे मन में केवल और केवल एक ही विचार उत्पन्न होता है।

जप या मन्त्र–साधना के द्वारा हम मन में उठने वाले विचारों की उथल–पुथल को रोक सकते हैं, उन्हें एक दिशा दे सकते हैं। जप क्या है? यह है एक ही शब्द या मन्त्र/श्लोक को बार–2 दोहराना। प्रायः हमें यह ज्ञात नहीं होता कि हमारा अगला विचार क्या होगा परन्तु जब हम जप कर रहे होते हैं तो हमें भली–भाँति मालूम होता है कि हमारा अगला शब्द/विचार क्या होगा। जब हम निश्चय कर लेते हैं कि हम एक शब्द/मन्त्र का लम्बे समय के लिए जाप करेंगें तब हमें एक कला मिल जाती है, technique मिल जाती है अपने मन को केन्द्रित करने की, अनुशासित करने की। अपने मन को दिशा देना या अनुशासित करना जप–विधि की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। Mental discipline is one important achievement of 'Japa' as a technique. जप के द्वारा हम आकस्मिक विचारों से सुरक्षित हो जाते हैं, हमें अपने स्वरूप को जानने का एक मार्ग मिल जाता है, एक अवसर मिल जाता है।

यद्यपि मन में एक के बाद एक विचार उठते रहते हैं तथापि क्रमबद्ध दो विचारों के मध्य में एक अवकाश होता है जो हमें अपने स्वरूप से परिचित कराता है और वह परिचय है कि हम विचार नहीं अपितु दो विचारों के मध्य silence हैं, मौन हैं। इस बिन्दु पर पुनः चिन्तन करते हैं। विचार उत्पन्न होते हैं, समाप्त हो जाते हैं। प्रत्येक विचार के पहले शान्ति है मौन है, और विचार के उपरान्त भी वही शान्ति। तो फिर मैं क्या हूँ। विचार के पहले भी मैं शान्ति हूँ, मौन हूँ विचार के उपरान्त भी मैं शान्ति हूँ, मौन हूँ। इसलिए विचारों के होते हुए भी, मैं मौन हूँ। यही मेरी प्रकृति है, स्वभाव है, धर्म है। जप के द्वारा ऐसी मानसिक स्थिति उत्पन्न हो जाती है, बाह्य–वृत्ति रुक जाती है। जप की यह दूसरी उपलब्धि है।

एक साधक सतत अभ्यास के द्वारा इस मौन की अवधि को बढ़ा कर अर्न्तमुखी हो जाता है, प्रभु का चिन्तन/ध्यान करने लगता है। मौन की अवधि को बढ़ाने का स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम एक सुन्दर और सरल उपाय है। कुछ साधकों का भी यही निष्कर्ष है: **चले वाते चलं चित्तं, निश्चले**

शेष पृष्ठ 11 पर

thearyasamaj.org

कदाचित् हम भूल न जायें

साहित्यकार, राजनीतिज्ञ तथा प्रशासकः के. एम. मुन्शी

● डॉ. भवानीलाल भारतीय

एक साथ साहित्यकार, राष्ट्रीय आन्दोलन के स्तम्भ तथा सफल प्रशासक स्व. कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने लेखन, राष्ट्रसेवा तथा प्रशासन में स्वयं को सफल सिद्ध किया। गुजरात के भरूच में तीस दिसम्बर, 1887 को डिप्टी कलेक्टर माणिकलाल मुन्शी तथा तापीबेन के यहां जन्मे कन्हैयालाल मुन्शी (घर में कनु) की उच्चशिक्षा बड़ौदा कालेज में हुई जहां अरविंद घोष (बाद में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी तथा पाण्डिचेरी में योग के साधक) प्रिंसिपल पद पर थे। मुन्शी में राष्ट्रभक्ति तथा देशसेवा के संस्कार इन्हीं प्राचार्य महोदय से संक्रमित हुए। कालान्तर में उन्होंने कानून की पढ़ाई की और बम्बई हाईकोर्ट में वकील बने। उन्हें भूला भाई देसाईं के जूनियर के रूप में काम करने का अवसर मिला, साथ ही मोहम्मद अली जिन्ना भी वकालत के पेशे में उनके आदर्श रहे। सफल वकील होने के साथ–साथ मुन्शी ने गुजराती साहित्य को समृद्ध किया। 1913 में उनका प्रथम उपन्यास **'वेर'** नी वसूलात प्रकाशित हुआ। किशोर वय के प्रेम की इस भावस्फूर्त कहानी को लेखक ने जिस कुशलता से प्रस्तुत किया, उसे पढ़ कर पाठक–समाज विस्मय– विमुग्ध हो गया।

स्वयं मुन्शी ने अपनी आत्मकथा में इस प्रेमकथा के विस्मयकारी प्रभाव की चर्चा करते हुए लिखा है कि तब यह नवलकथा (उपन्यास) एक गुजराती पत्रिका में धारावाही छपती थी, किन्तु इस पर लेखक का छद्म नाम ही अंकित रहता था। मैं कोर्ट के बाररूम में बड़े–बूढ़े खुर्राट वकीलों के मुंह से इस उपन्यास की चर्चा तथा तारीफ सुनता। वे हैरान होते थे कि तन, मन और जगत् किशोर (नायक नायिका) की इस हृदय–स्पर्शी प्रणयकथा को लिखने वाला आखिर है कौन? अनको यह पता नहीं था कि इस उपन्यास का लेखक तो उनका सहकर्मी एक जूनियर वकील (के. एम. मुन्शी) ही है। मुन्शी की उपन्यास कला का त्रिविध प्रस्फुटन हुआ। प्रथम उन्होंने अपने गुजरात के पुरातन गौरव का आख्यान करने वाले चार उपन्यास क्रमशः लिखे। **'पाटन नी प्रभुता', 'गुजरात के नाथ', 'राजाधिराज' तथा 'जय सोमनाथ'**। प्रथम तीनों का कथाक्रम धारावाही घटनाओं का जोरदार प्रस्तुतीकरण है। मुन्शी ने स्वयं माना है कि उनके ऐतिहासिक उपन्यासों पर फ्रैंच उपन्यासकार अलैकजेण्डर ड्यूमा तथा अंग्रेजी कथाकार सर वालटर स्कॉट की कृतियों का परोक्ष प्रभाव है।

गौरवशाली गुजरात के उस स्वर्णयुग का चित्रण जिस मनोजता से लेखक ने किया है उसे पढ़कर पाठक भावविभोर हो जाता है। इन उपन्यासों के पात्र अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं। गुजरात के शासक सोलंकी राजा कर्णदेव, युवराज त्रिभुवनपाल, पाटन के गौरव का रक्षक महामंत्री मुंजाल जैसे अमर पात्रों का सृजन मुन्शी द्वारा ही सम्भव हो सका है। इन उपन्यासों में जहां राजनैतिक घात–प्रतिघात, अन्तःपुरों के छल–छिद्र तथा पात्रों की अहम्मन्यता से उत्पन्न परिस्थितियों का जीवन्त चित्र है तो साथ ही लेखक के स्वयं के आदर्श तथा धारणाएं भी पात्रों के माध्यम से व्यक्त हुई हैं। *'पाटन नी प्रभुता'* का यति आनन्दसूरि जैनधर्म की दिग्विजय के लिए कटिबद्ध है तो उसका प्रतिद्वन्द्वी देवप्रसाद वैदिकधर्म की विजययात्रा का नेतृत्व करता है। महामंत्री मुंजाल को अपने पाटन के गौरव का मान है तो कीर्तिदेव व्यापक राष्ट्रहित का चिन्तन कर मुंजाल का चेतावनी देता है कि यदि सम्पूर्ण भारत के हित को ओझल किया गया तो एक अकेले पाटन से देशवासियों का कल्याण नहीं होगा। इन उपन्यासों में जिन तेजस्वी और प्रभावी पात्रों की एक शृंखला हमें दिखाई देती है, पाठक के लिए उसे भुलाना कठिन है। महारानी मीनल देवी, काक भट तथा उसकी पत्नी मंजरी, मुंजाल तथा अन्य मंत्री– शतशः पात्र इस गर्वी गुजरात की गौरवगाथा के अमिट आयाम हैं।

मुन्शी की दूसरी उपन्यास–शृंखला 'आर्यावर्त की महागाथा' के रूप में आई। इसमें लोपामुद्रा, लोमहर्षिणी तथा भगवान् परशुराम की औपन्यासिक त्रिपूटी पाठकों और समीक्षकों का ध्सान आकर्षित करती है। पुरातन वैदिकयुग के जीवन का अध्ययन मुन्शी ने पाश्चात्य वेदज्ञों तथा प्राच्यविद्या–विशारदों की दृष्टि से किया है। इसलिए यदि इन उपन्यासों में चित्रित कुछ बातें पाठकों के मनोनुकूल न हों तो इसमें लेखक को दोष देना न्याय्य नहीं होगा। कारण कि भारत के प्राचीन इतिकास को एक बृहत् ग्रन्थमाला के रूप में जब मुन्शी ने भारतीय विद्याभवन के तत्वावधान में प्रकाशित कराया तो इन आलोचकों के आक्षेपों के समाधान में उन्होंने स्वीकार किया कि उनका वेदों का अध्ययन प्रो. मैक्समूलर की वेद व्याख्याओं पर निर्भर है। तथापि विश्वामित्र, परशुराम लोपामुद्रा जैसे पात्रों का सृजन करने में लेखक की प्रतिभा दर्शनीय है।

उनके सामाजिक उपन्यासों में अपराध किसका (कोनो वाक), स्पप्नद्रष्टा तथा वैर का बदला प्रमुख हैं। जैसा कि हम लिख चुके हैं 'वेर नी वसूलात' यद्यपि उनकी प्रथम कथारचना है, किन्तु वस्तुविन्यास, पात्रचित्रण तथा गुजरात की देशी रियासतों के अन्तर्कलह, सामन्ती षड्यंत्रों तथा मुसाहिबों के क्रियाकलाप का जीवन्त चित्र इसमें चित्रित हुआ है। **स्वामी अनन्तानन्द जैसे तेजस्वी संन्यासी की अवतारणा के पीछे लेखक का एक अन्य गुजराती संन्यासी स्वामी दयानन्द के विचारों से प्रभावित होना स्पष्ट दिखाई देता है।**

आत्मकथा लेखन में उनकी आत्मकथा के दो खण्ड कई वर्ष पहले प्रकाशित हुए थे। 'सीधी चढ़ान' और 'आधे रास्ते' मुन्शी के बहुआयामी जीवन के विभिन्न पड़ाव हैं। राजनीति के क्षेत्र में मुन्शी ने जब प्रवेश किया तब गांधी जी देश के सार्वजनिक जीवन पर अपना प्रभाव जमाने के दौर में थे। श्रीमती एनी बेसेन्ट की होमरूल लीग के वे सदस्य बने तथा तत्कालीन राजनीतिज्ञों के सम्पर्क में आये। कालान्तर में गांधी की आंधी में वे बह गये। कांग्रेस के कार्यकर्त्ता और नेता बने तथापि गांधी जी के समक्ष उन्होंने वैचारिक आत्मसमर्पण कभी नहीं किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की सदस्यता से जब महात्मा गांधी ने यह कहते हुए त्यागपत्र दे दिया कि सम्मेलन को उनके द्वारा चलाई गई 'हिन्दुस्तानी भाषा' (हिन्दी–उर्दू की मिश्रित दोगली कृत्रिम भाषा) का समर्थन करना चाहिए तो उन्होंने हिन्दी के प्रबल भक्त तथा राष्ट्रभाषा के रूप में उसे अपनाये जाने के प्रबल समर्थक बाबू पुरूषोत्तमदास टण्डन का ही समर्थन किया।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 1945 के उदयपुर अधिवेशन के सभापति पद से भाषण देते हुए मुन्शी जी ने गांधी जी के राष्ट्रभाषा विषयक अनौचित्य को स्पष्ट किया तथा खेदपूर्वक महात्मा जी का सम्मेलन की अध्यक्षता से त्यागपत्र स्वीकार कर लिया। इस दौरान उन्होंने कहा कि गांधी जी ने तो उनके उपन्यास 'पृथ्वी–वल्लभ' में धारनरेश मुंज तथा उसके शत्रु तैलप की अधेड़ बहिन मृणालवती के प्रौढ आयु में प्रणय के चित्रण पर भी आपत्ति की थी, किन्तु मुन्शी जी ने गांधी जी से विनम्रतापूर्वक कह दिया कि लेखक के विचार–स्वातन्त्र्य पर बाधा डालने को उचित नहीं कहा जा सकता।

भारत के स्वतंत्र हो जाने पर मुन्शी को प्रशासन में अनेक दायित्वपूर्ण कार्य दिये गये। पं. नेहरू के मंत्रिमण्डल में वे खाद्य मंत्री रहे। परन्तु इससे पहले संविधान निर्मात्री सभा के प्रमुख सदस्य के रूप में उन्होंने डॉ. अम्बेडकर के साथ भारतीय संविधान के मसौदे को अन्तिम रूप देने में अपना सहयोग किया। **जब संविधान में भारत की राजभाषा के बारे में नीतिनिर्माण का प्रश्न उपस्थित हुआ तो सर गोपालस्वामी आयंगार के सहयोग से उन्होंने हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किये जाने पर बल दिया।** तथापि पन्द्रह वर्षो तक अंग्रेजी को राजभाषा के रूप में चलते रहने दिया जाये, इसे भी अंकित किया गया। जब हैदराबाद में निजामशाही ने भारत के अंगरूप में हैदराबाद को रहने से इन्कार किया तो भारत के हितों की रक्षा करने के लिए सरदार पटेल ने उन्हें हैदराबाद में भारत के एजेंट जनरल (राजदूत के समकक्ष) पद पर भेज। विषम स्थितियों में भी मुन्शी ने इस कठिन कार्य को सफलतापूर्वक किया। कुछ समय बाद उन्हें उत्तरप्रदेश के गवर्नर के पद पर रहना पड़ा। मुन्शी जी ने च. राजगोपालाचार्य के साथ स्वतंत्र पार्टी नाम से पृथक् राजनैतिक दल की स्थापना की, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली।

मुन्शी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रति मेरा निजी आकर्षण भी रहा। 1945 के उदयपुर सम्मेलन के अध्यक्ष पद से उनका भाषण प्रभावशाली था मैं अपने कॉलेज के सहपाठियों के साथ सम्मेलन में उपस्थित था और उन्हें तब निकट से देखने का अवसर मिला। एक बार वे जोधपुर आए, तब वे कांग्रेस से हट चुके थे और स्वतंत्र पार्टी के नेता के रूप में उनका वहां आना हुआ था। उनके आगमन का लाभ उठा कर हमने उन्हें स्थानीय आर्यसमाज में उद्बोधन हेतु आमंत्रित किया। अपने परिचयात्मक प्रास्ताविक भाषण में मैंने उनके साहित्यकार के रूप पर विस्तार से प्रकाश डाला था।

वस्तुतः मुन्शी जी को अपने प्रदेश गुजरात की संस्कृति और परम्पराओं पर अभिमान था। गर्वीली गुर्जरी का बखान उन्होंने अपने लेखन में पदे–पदे किया। भारत के अतीतकालीन अनेक महापुरुष उनके प्रेरणास्रोत रहे थे। चाहें तो हम उन्हें 'सुपरमैन' की संज्ञा दे सकते हैं। ऐसे महापुरूषों में यादवशिरोमणि श्रीकृष्ण, भार्गववंश के अवतंस परशुराम तथा महामति चाणक्य का उल्लेख करने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। इन महापुरुषों के बारे में उनके निम्न उद्गार देना समीचीन

शेष पृष्ठ 07 पर ☞

thearyasamaj.org

वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द

● खुशहाल चन्द्र आर्य

यह तो मैंने कई पुस्तकों में पढ़ा है कि मध्यकालीन साम्प्रदायिक आचार्यों जिनमें, सायण, उव्वर व महीधर मुख्य हैं। इन्होंने वेद–मन्त्रों का भाष्य, मन्त्रों के देवता, छन्द, पद, पदार्थ व सन्दर्भ आदि की उपेक्षा करके मन्त्रार्थ को विनियोग के अनुसार भाष्य किया है जिससे अर्थ का अनर्थ हो गया है। जैसे वेदों में गोवध आया है। इन आचार्यों ने गोवध का सीधा अर्थ गो का वध करके यज्ञों में डालना दिया है। इसी अर्थ से यज्ञों में पशबलि का प्रचलन हो गया जिससे महात्मा बुद्ध जैसे लोगों का ईश्वर, वेद और यज्ञों के प्रति श्रद्धा भाव उठ गया। महर्षि दयानन्द ने बताया कि गो के कई अर्थ होते हैं। गाय के अतिरिक्त, सूर्य की किरण, इन्द्रियाँ, वाणी आदि को भी गो कहा जाता है। यहाँ का तात्पर्य इन्द्रियाँ हैं, यानि इन्द्रियों पर संयम रखना गो वध होता है। इस प्रकार महर्षि दयानन्द ने वेदों की रक्षा की।

पूज्य आचार्य पं. उमाकान्त जी उपाध्याय ने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है 'वेद और दयानन्द'। इस पुस्तक में आचार्य जी ने 'विनियोग' को बहुत अच्छी प्रकार समझाया है। इस पुस्तक को पढ़कर मैंने भी विनियोग को काफी समझा है। अन्य पाठकगण भी इसको समझ पाये इसलिए उसकी पुस्तक का एक अंश मैंने एक लेख के रूप में उद्घृत किया है, वह इसी भांति है:–

वेद और विनियोग:– स्वामी दयानन्द ने वेदों के सम्बन्ध में प्रचलित अनेक भ्रमों, अन्धविश्वासों, ऐतिहासिक भूलों आचार्यों की मान्यताओं से विपरीत भाष्यों में भूलों का निराकरण किया है। वेद भाष्यों के सम्बन्ध में सायणाचार्य आदि मध्यकाल के भाष्यकर्त्ता आचार्यों ने मन्त्रों के विनियोग के प्रसंग में भूल की है। आचार्य सायण, आचार्य उव्वर, आचार्य महीधर आदि ने विनियोगों के आधार पर मन्त्रों का अर्थ किया है। वेद में आये हुए मन्त्रों में पद, पदार्थ, देवता आदि का विचार करके अर्थ करना समीचीन होगा। किन्तु इन मध्यकालिक साम्प्रदायिक आचार्यों ने उनके समय में प्रचलित विनियोगों के आधार पर मन्त्रों का अर्थ किया है। इसका अर्थ यह हुआ है कि इन आचार्यों ने मन्त्रों के पद, पदार्थ, सन्दर्भ आदि सबकी उपेक्षा करके मन्त्रार्थ को विनियोग के अनुसार भाष्य किया। अब देखना यह है कि विनियोग है क्या और कैसे वह मन्त्रों के अर्थों को प्रभावित करता है।

विनियोग क्या है:– विनियोग शब्द वि+नि+योग है। योग शब्द है जिसका अर्थ है जुड़ना, मिलना। जोड़ना आदि (युजिर योगे धातु है) वि और नि उपवर्ग है। वि का अर्थ है विशेष रूप से और नि का अर्थ है निश्चित रूप से। सो किसी मन्त्र को किसी कार्य में, किसी कर्मकाण्ड में विशेष प्रकार से निश्चित रूप से जोड़ लेना, उस मन्त्र का इस कर्मकाण्ड में विनियोग है। उदाहरण के लिए आर्य परम्परा में सोलह संस्कारों में कर्णवेध एक संस्कार है। इस कर्ण वैध संस्कार में शिशु के कान के निचले भाग ललरी को बींध दिया जाता है। उसमें छेद किया जाता है। जिस समय कान में छिद्र किया जाता है, उस समय निम्न मन्त्र का पाठ किया जाता है:–

''भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षि भिः यजत्राः।
स्थिरैरङ्ग स्तुष्टुवासं स्तनूयिर्व्यशेमहि देवहितं यदा युः।। (यजु.25–29)

इसका तात्पर्य यह हुआ कि 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम' इस मन्त्र का विनियोग कर्णवेध नामक संस्कार में हुआ है। सो विनियोग का अर्थ हुआ–किसी संस्कार में, किसी यज्ञकार्य में, किसी कर्मकाण्ड में, किसी अवसर विशेष पर, किसी मन्त्र का पाठ करना या उस मन्त्र को पढ़कर कोई कर्मकाण्ड करना या यज्ञ में आहुति डालना।

मध्यकालीन आचार्यों का मत:– सायणाचार्य आदि मध्याकालीन आचार्य की मान्यता यह है कि मन्त्रों के भाष्य या अर्थ उनके विनियोग के अनुसार करना चाहिए। अतः इन मध्यकालीन आचार्यों का सिद्धान्त हुआ कि अर्थ या भाष्य को मन्त्र के विनियोग का अनुगामी होना चाहिए।

स्वामी दयानन्द का मत:– स्वामी दयानन्द का कहना है कि मन्त्रार्थ को विनियोग से स्वतन्त्र होकर उसके प्रकरण सन्दर्भ पद, पदार्थ के अनुकूल करना चाहिए। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मन्त्रार्थ अपने सन्दर्भ में विनियोग से स्वतन्त्र है और विनियोग मन्त्रार्थ का अनुगामी रहे। मध्यकाल के आचार्यों के मत में विनियोग स्वतन्त्र है और मन्त्रार्थ को विनियोग के पीछे चलना चाहिए। स्वामी दयानन्द की मान्यता है, मन्त्रार्थ अपने सन्दर्भ, पद, पदार्थ के अनुसार स्वतन्त्र रहना चाहिए और विनियोग मन्त्रार्थ का, मन्त्रों के अर्थों की भावनाओं के अनुकूल होना चाहिए। अर्थात् विनियोग को मन्त्रार्थ का अनुगामी होना चाहिए, मन्त्र के अर्थ के पीछे चलना चाहिए।

कर्ण वेध संस्कार में 'भद्रं कर्णे भिः शृणुयाम' इत्यादि का विनियोग इसलिए है कि इस मन्त्रांश का अर्थ है कि हम (कर्णेभि) कानों से भद्र सुने (शृणुयाम) किन्तु तब भूल हो जाती है जब हमारे भाष्यकार यह कहने लग जाते हैं कि यह मन्त्र है ही कर्णवेध के लिए। मन्त्र में और भी बहुत कुछ है।

मन्त्र का पूरा अर्थ इस प्रकार है– हे यजन्ना देवाः। हे यजनीय, सत्करणीय, दिव्यगुण विशिष्ट परमेश्वर! हम कानों से भद्र सुने, आँखों से भद्र कल्याणकारी ही देखें, हम सुदृढ़ स्वस्थ अंगों से आपकी स्तुति करते हुए पूर्ण आयु को प्राप्त करें। इस मन्त्र में कानों से भद्र सुनने, आँखों से भद्र देखने और स्वस्थ दृढ़ अंगों से प्रभु परमेश्वर की प्रार्थना करते हुए पूर्ण आयु प्राप्त करने की प्रार्थना है। कान में छिद्र करने की तो कोई बात है ही नहीं। पाठक यह सहज अनुमान कर सकते हैं कि मन्त्र के अर्थ या भाष्य को मन्त्र के देवता, छन्द, पद, पदार्थ के अनुसार करना ही उचित है। मन्त्रार्थ को विनियोग के पीछे चलाना या पद–पदार्थ की उपेक्षा करके विनियोग के अनुसार अर्थ को तोड़ना–मरोड़ना अन्याय है। मन्त्रार्थानुसार ही विनियोग उचित है, न कि विनियोग के अनुसार अर्थ अन्ततः किस मन्त्र का कहाँ, किस कर्मकाण्ड में विनियोग हो, कहाँ विनियोग न हो, यह एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। मन्त्र तो अपौरूषेय है, परमेश्वर ने मानव के कल्याणार्थ उन्हें प्रदान किया। किस मन्त्र में क्या पद है, क्या छन्द है, क्या पूर्व है, क्या पर है, ये सब प्रभु प्रदत्त होने के कारण प्रश्न कोटि से ऊपर है। किन्तु कर्मकाण्ड और उनमें करणीय क्रियाएँ, क्रियाओं में पठनीय मन्त्र, किस मन्त्र को पढ़कर कौन सी क्रिया की जाए, यह सब निर्णय–निर्धारण ऋषियों ने परवर्ती काल में किया है। चारों संहिताओं में तीस हजार से अधिक मन्त्र हैं। कोई भी मन्त्र कहीं भी नहीं पढ़ा जाता। कहाँ, किस धर्म में किस मन्त्र को पढ़ा जाये? बीस हजार से अधिक मन्त्रों में से चुनना है, यह सब परवर्ती काल में ऋषियों ने निर्धारित किया है। उनके चुनने का आधार तो मनमानी हो नहीं सकता, कोई आधार तो होना ही चाहिए और वह आधार अर्थ को छोड़कर अन्य तो होना ही नहीं चाहिए। अतः अर्थ के आधार पर ही विनियोगः होना उचित है। किसी भी मन्त्र का कहीं भी विनियोग मनमानी करके फिर मन्त्रार्थ को विनियोग के अनुसार करना तो अनुचित है, अन्याय है। किन्तु दुर्भाग्य है कि सायण, महीधर आदि आचार्यों ने विनियोग के अनुसार मंत्रों का अर्थ किया है।

इस लेख से जान लिया गया है कि मध्यकालीन आचार्यों ने जो वेद–भाष्य किये, वे गलत इसलिए हो गए कि उन्होंने मन्त्रों का केवल विनियोग देखकर ही भाष्य कर दिया, जबकि उनको मन्त्र का देवता, छन्द, पद, पदार्थ व सन्दर्भ यानि किस प्रकरण में यह मन्त्र लिखा गया है। यदि यह देखकर करते तो उनका भाष्य भी गलत नहीं होता। पर महर्षि दयानन्द ने इस सब बातों का ध्यान रखते हुए, अपने वेद–भाष्य किये हैं। इसीलिए वे सही व उत्तम हैं और तर्क व विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरते हैं। यह महर्षि का मनुष्य–मात्र पर एक अनुपम उपकार है, इसीलिए महर्षि को वेदोद्धारक माना गया है।

180 महात्मा गान्धी रोड, (दो तल्ला)
कोलकाता–700007
फोन. 2218–3825, 6450 5013 ऑफिस,
26758903 निवास (033)
मो. 9830135794

☞ पृष्ठ 06 का शेष

साहित्यकार, राजनीतिज्ञ ...

होगा। अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'गुजरात के नाथ' में उन्होंने लिखा है– **"इतिहास की रंगभूमि पर ऐसे व्यक्ति जब–जब आते हैं तब दूसरे तत्त्व पुरुषार्थ–विहीन हो जाते हैं । इतिहासक्रम रुक जाता है, समय–शक्तियों का मान भूल कर दर्शकों का मन उनके आसपास लिपट जाता है। नायक के मोह में नाटक का अर्थ विस्मरण हो जाता है। भूतकाल की रंगभूमि पर ऐसे अनेक व्यक्ति हुए हैं–मधुसूदन योगेश्वर श्रीकृष्ण, परशुराम और समस्त जगत् के राजनीतिज्ञ शिरोमण चाणक्य।"** कहना नहीं होगा कि श्रीकृष्ण को वे द्वारकाधीश के रूप में अधिमान देते हैं। परशुराम और चाणक्य तो उनके दो उपन्यासों के नायक ही हैं।

गुजरात पर गर्व करने के कारण हैं– यहाँ श्रीकृष्ण, दयानन्द और गांधी सदृश महापुरूषों का जन्म या निवास। उक्त उपन्यास में उन्होंने गुर्जर प्रदेश की प्रशस्ति में लिखा – **"गुजरात एक महावृक्ष है। उसकी जड़ में परमात्मा (महापुरूष) श्रीकृष्ण का कर्मयोग छिपा है। उसकी डालियों पर महाकवि नर्मद (कवि) और महात्मा गांधी की कोपलें फूटी हैं।"** गुजराती का अभ्यास होने के कारण मैंने उनकी कतिपय औपन्यासिक कृतियों को मूल गुजराती में पढ़ने का मन बनाया और अपने एक साथी से मुम्बई से उनकी ये रचनाएं मंगवाई और पढ़ीं। 'वेर नी वसूलात' की प्रेमकहानी मुझे युवाकाल में तो रोमंचित तथा प्रभावित करती रही, देखता हूं वह प्रभाव और आकर्षण इस वार्धक्य में भी कम नहीं हुआ है।

–3/5, शंकर कालोनी,
श्रीगंगानगर (राज.)

thearyasamaj.org

हमारा मित्र

● अभिमन्यु कुमार खुल्लर

इस संसार में आने के पश्चात् हम बचपन से ही मित्र बनाने लगते हैं सांसारिक प्रवाह में अनेक मित्र जुड़ते हैं और अनेक मित्र पीछे छूट जाते हैं। जो पीछे छूट जाते है, न हम उन्हें याद करते हैं और न ही वे। हमें बुरा भी नहीं लगता। शायद इसे ही संसार की रीत कहते हैं। यह समझने का मौका आयु के अंतिम पड़ाव में ही मिलता है, उससे पहले नहीं। मैं एक ऐसा मित्र जानता हूँ जो होता तो जन्म के साथ है, पर जब आप उसे मित्र मानकर चलना प्रारम्भ कर देते है तो वह आपका साथ कभी नहीं छोड़ता।

ईश्वर के साथ व्यक्ति ने अनेक संबंध बनाये हैं–माता–पिता, गुरु, दाता और न जाने क्या–क्या। ये सब संबंध ईश्वर को उच्चासन पर और भक्त को नीचे आसन पर बिठा देते हैं। मुझे ये संबंध जोड़ने में उतना आनन्द नहीं आया जितना मित्र का संबंध जोड़ने से आया। 'मैत्री' शब्द में अपनत्व की प्रगाढ़ता, विश्वास, खुलापन, और बराबर की हिस्सेदारी अन्तर्भूत है। सामान्यतया यही कहते हैं कि संकट में, विपत्ति में जो काम आए वहीं 'मित्र' कहलाता है। यह पैमाना ठीक है, पर छोटा है। मित्र की यह परिभाषा जब दृष्टिगोचर हुई तो मैं उछल पड़ा–सच्चा मित्र वही है जो आपके अत्यन्त गुप्त भेद को, किसी भी संकट में पड़ने पर प्रकट नहीं करता।

मेरी यह बात वही समझ सकता है, जिसको यह बात अनुभव करने का मौका मिला हो। मौका, मिलता तो अनेक को है पर मित्रता की कलई उतारने का यह स्वर्ण अवसर बन जाता है। दूसरे को चाहे वह निकट संबंधी हो या घनिष्ठ मित्र नीचा दिखा कर भी वह, सुख उठाता ही है। पर, यदि ऐसा मौका मिले और आप परपीड़ा जनित सुख का लोभ संवरण कर पाएं, जो आप अनचाहे उच्चासन पर विराजमान हो जाते हैं और सर्वाधिक विश्वसनीय बन जाते हैं।

मैं व्यक्तिगत जीवन से यथार्थ उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूँगा। नाम–पते का उल्लेख नहीं कर सकूँगा।। छद्म नाम–पता भी नहीं लिखूँगा। कार्यालय के वरिष्ठ अधिकारी ने जिनसे मेरा कोई घनिष्ट संबंध नहीं नहीं था और परिचय भी कुछ पुराना नहीं था; मुझसे पूछा कि कार्यालय के पश्चात् मैं उनके घर आ सकता हूँ। कारण पूछने पर कहा कि घर पर ही बताऊँगा। पता पूछ कर घर पहुँच गया। घर पर कहा – पास वाले मकान में चलो। वहाँ जो उन्होने कथा सुनाई तो मुझे इस बात पर आश्चर्य हुआ कि एक अनजान व्यक्ति पर उन्होंने इतना भरोसा कैसे किया और उन्हें कैसे विश्वास हुआ कि मैं उनकी सहायता करूँगा। पैतृक जीन्स में निडरता मिली है, शरीर भी काफी हृष्ट–पुष्ट था। मैंने स्वीकृति दे दी। किस्सा यह था कि उनकी नवयौवना पुत्री, एम.ए. की छात्रा, एक मात्र संतान एक आवारा गुण्डे के चंगुल में फंस गई थी। जाने किन परिस्थितियों में उसके घर में आना–जाना हो गया था। दिन ब दिन उस लड़के का शिंकजा कसता जा रहा था। जब पानी सिर से ऊपर हो गया तो उनके लिये जीवन–मरण का प्रश्न बन गया। कॉलोनी में वह और उसके यार –दोस्त चक्कर लगाते ही रहते थे। लड़की को भी निकालना और परिवार को भी। मैंने उनसे कहा लड़की को बुलाइ, मैं उसे अपने घर ले जाता हूँ। आप सपरिवार सुविधा अनुसार आ जाइए। एक घण्टे में वे लोग अपने घर पर आ गए। सुबह 2 बजे पठानकोट एक्सप्रेस से वह लड़की को लेकर रिश्तेदारी में जाना चाहते थे। उनका घर स्टेशन के पास ही था इसलिए गुण्डों द्वारा घिर जाने की आशंका के कारण मुझे भी साथ ले गए। लड़की की व्यवस्था कर तीन चार दिन बाद ही ग्वालियर लौट आए। आते ही कहा–एक काम और करो। अभी ग्वालियर में हमारा रहना नही हो पाएगा, कहीं रेसीडेन्ट ऑफिस में पोस्टिंग कराओ। यह काम बड़ा था। फिर भी मैंने हिम्मत की, संबंधित अधिकारी को जब बताया कि महाशय मय अपने माता –पिता के मेरे घर पर टिके हुए हैं।

अधिकारी महोदय ने मेरी बात की सत्यता पर पूर्ण विश्वास कर ग्वालियर के बाहर तीन साल के लिये उनकी पदस्थापना तत्काल कर दी। प्रकरण हम दोनों के बीच ही रहा। अब तो मुझे भी सेवानिवृत्त हुए 17 वर्ष हो गये हैं। वह कहाँ हैं मुझे ज्ञान नहीं। मुझे आज भी प्रकरण यादकर संतोष मिलता है, सुख मिलता है कि उनके परिवार की मर्यादा पर आँच नहीं आई। कुछ घटनाओं का वर्णन कर सकता हूँ। पर इसलिये नहीं कर पाऊँगा कि पात्र जीवित हैं और आस–पास घूम रहे हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसे कर्म ईश्वर जोड़ के खाते में अवश्य रख लेता होगा। इस जीवन में ऐसे प्रसंगों से आपका आत्मबल बढ़ता है। ईश्वर पर विश्वास गहराता जाता है, क्योंकि ईश्वर स्वयं करोडों लोगों के अत्यन्त गोपन रहस्यों को प्रकटतया उजागर नहीं करता। एक तो यह मानवीय कार्य व्यापार है दूसरे आग लगाकर मज़ा लूटना भी उसका गुण–धर्म नहीं है।

ईश्वर की मित्रता में दूसरा गुण उसकी सहायता करने की अपार सामर्थ्य है। वह जैसी सहायता करता है, उसे देखकर हम अनायास ही कह उठते हैं, यह दैवी सहायता है, प्रभु की कृपा है। वेद मर्मज्ञ पं. शिवनारायण उपाध्याय जी (कोटा) ने मुझे एक व्यक्तिगत पत्र में लिखा था कि देवी सहायता की अनुभूति उन्हें जीवन में अनेक बार हुई है और यही अनुभूति ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण है। मेरा व्यक्तिगत अनुभव भी यही कह रहा है। अपने जीवन के कतिपय प्रसंगों को लेखनीबद्ध करता हूँ–

(1)पत्नि श्रीमती स्वदेश दोनों छोटे बच्चों, मनीष, व अमित को लेकर पठानकोट बस स्टेण्ड पर खड़ी थीं। बस आ गई थी और धक्का मुक्की में लोग अपना समान बस पर चढ़ा रहे थे। मैं भी भरी हुई बड़ी वी.आई.पी. की अटैची लेकर चढ़ गया। जब अंतिम सीढ़ी पर पहुँचा तो अटैची वाला हाथ हवा में लहरा गया और मैं मय अटैची के नीचे गिरा। मुझे बिलकुल चोट नहीं आई। पहला विचार यही आया कि यदि गलत एंगल से गिरता और दुर्घटनाग्रस्त हो जाता तो पत्नि बच्चों को कैसे संभालती और कैसे मुझे? क्या इसे ईश्वरीय सहायता के अतिरिक्त, कुछ कहा जा सकता है?

(2)भानजे ज्योति के साथ उसकी स्टेण्डर्ड गाड़ी (बहुत छोटी) में ग्वालियर से मण्डी हिमाचल जा रहे थे। गाड़ी अच्छी स्पीड पर दौड़ रही थी, होटल पास में ही था कि ज्योति को स्टीरियों में कैसेट चेन्ज करने के लिए झुकना पड़ा। वह झुका और मुझे पेड़ों की हरियाली दिखाई देने लगी। मैं चीख उठा–ज्योति, ज्योति ने जो स्टीयरिंग काटा तो गाड़ी हाइवे पार कर नीचे झाड़ियों में रेत में घुस गई। पत्नि पिछली सीट पर थी और भैया अभी गर्भ में ही था। किसी को कोई चोट नहीं आई। दुर्घटना का असर आज भी गहरा है।

(3)11 फरवरी 14 को ब्रेन हेमरेज का पहला अटैक हुआ। तीन दिन आई.सी.यू. में रखने के बाद डॉक्टरों का निर्णय हुआ कि रक्त का थक्का घुल गया है और मुझे अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। 23 को फिर तबियत बिगड़ने लगी। दोपहर का खाना 4 बजे खाया। घुटने मोड़कर, बाहर की तरफ पैर निकाल कर लेटा रहा।। बजे तक पत्नि श्रीमती स्वदेश ने दो–तीन बार खाना खाने के लिये कहा तो मनाकर दिया। फिर हाँ, हूँ के अलावा कोई बात नहीं और धीरे–धीरे अचेतावस्था में चला गया। रात 2:30 बजे पत्नि समीपस्थ भानजे को बुला लाई। यही निर्णय हुआ कि सुबह अस्पताल ले चलेंगे।

सुबह पूर्ण बेहोशी की स्थिति में परिवार अस्पताल (प्राईवेट) पहुँचाया गया। डॉक्टर को बुलाया गया। डॉक्टरों की राय थी कि ब्रेन हेमरेज फिर हो गया है। आवश्यक जाँचो के पश्चात् ऑपरेशन कराने की सलाह दी गई। पत्नि ने तत्काल कहा कि आप ऑपरेशन की तैयारी कीजिये। आवश्यक धन मैं काउण्टर पर जमा करा रही हूँ। सब तैयारी में शाम सात बज गये। सात बजे प्रारंभ हुआ। ऑपरेशन साढे आठ बजे समाप्त हुआ। दूसरे दिन 24 घण्टे के बाद होश आया। दानों हाथ पलंग से बंधे थे। दस दिन बाद घर आया। एक माह तक घर के बाहर जाने की इजाजत भी नहीं थी। टायलेट जाने जाने के लिये भी पत्नि पीछे चलती थी। डेढ़ माह के बाद मस्तिष्क की धुंध साफ होने लगी। मन में बार–बार यही विचार उठता था कि पत्नि से पूछूँ कि रात 1 बजे से शाम 8 बजे तक, ऑपरेशन प्रारंभ होने तक, तुम्हारी मनः स्थिति क्या रही। पर ताजा घाव कुरदने का मन नहीं हुआ, हिम्मत नहीं हुई, मन का यह संघर्ष चल ही रहा था कि अप्रैल 2014 को वेदमर्मज्ञ पं. शिवनारायण उपाध्याय जी (कोटा) का पत्र मिला। उस पत्र में पण्डित जी ने दु:ख प्रकट किया कि जब आपकी पत्नि मर्मान्तक पीड़ा झेल रही थीं तो उन्होंने हमें (पं. जी को) याद क्यों नहीं किया। मुझे अपनी बात करने का मौका मिल गया। मैने पत्र पढ़कर सुना दिया और पूछा कि जानना चाहता हूँ कि तुम्हारी मानसिक स्थिति कैसी थी? 20 घण्टे से निश्चेत–अवस्था में पड़ा हुआ देखकर क्या विचार आ जा रहे थे। पत्नि ने बिना विलम्ब किये तत्काल कहा कि मुझे ईश्वर का पूरा भरोसा था कि आप बिलकुल ठीक हो जायेंगे। दूसरे मुझे डॉ. उदेनिया, न्यूरोफिजिशियन जो मेरे कार्यालय सहयोगी के सुपुत्र हैं, उन पर भी पूरा भरोसा था कि इलाज में वह कोई कसर नहीं छोड़ेगें। दोनों भरोसे में खरे निकले और आप ठीक है।

सवाल यह उठता है कि श्रीमती जी की वैदिक ईश्वर में इतनी प्रबल, दृढ़ आस्था न होती तो वह टोने–टोटके, गंडे–ताबीज, साधु–फकीर, मन्नतें, पचास चक्करों में पड़कर, रो–रोकर बुरा हाल कर देती। ऑपरेशन सायं 7:00 बजे प्रारंभ हुआ। सबकी वाणी मौन हो गई। पत्नि ने इसे सुअवसर समझ कर संध्या कर ली। परिवार व बाहर के सभी परिचित लोग उसके धैर्य, मस्तिष्क पर पूर्ण नियंत्रण रख कर, सभी आवश्यक काम व व्यवस्था का संचालन स्वयं करते हुए देख कर आश्चर्यचकित थे। आज भी हैं। मैं अपनी बात नहीं करता पर श्रीमती की बात सुन कर, समझ कर

शेष पृष्ठ 11 पर

thearyasamaj.org

देव ऋण, पितृ ऋण आचार्य ऋण से मुक्त कैसे हों

● शिव नारायण उपाध्याय

वैदिक वाङ्मय में देव ऋण, पितृ एवं आचार्य ऋण (ऋषि ऋण) इन तीन ऋणों के सभी मनुष्य बन्धन में रहते हैं। उसी व्यक्ति का जीवन सफल माना जाता है जो इन तीनों ऋणों से अपने आपको मुक्त कर ले। देव ऋण का अर्थ होता है सूर्य, चन्द्र, वायु, जल , अग्नि आदि प्राकृतिक पदार्थों से लिया गया लाभ। हम सभी इस तथ्य से परिचित है कि सूर्य द्वारा हमें ताप ऊर्जा और प्रकाश ऊर्जा मुख्य रूप से प्राप्त होती है। वृष्टि जिसके अभाव में वनस्पतियाँ, ओषधियाँ, खाद्यान्न आदि के उत्पन्न होने की हम कल्पना ही नहीं कर सकते। सूर्य के ताप नाना प्रकार रोगाणुओं को भी नष्ट करके हमें नीरोग रहने में सहायता करते हैं। सूर्य के अभाव में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसी प्रकार चन्द्रमा की शीतल किरणों से हमें रात्रिकाल में प्रकाश प्राप्त होता है। साथ ही चन्द्रमा के कारण फलों में मधुर रस भी बनता है। रात्रि में चन्द्रमा की शीतल छाया में बैठना मन को प्रसन्नता और शरीर को दीर्घायु प्रदान करता है। क्या हम वायु के अभाव में जीवित रहने की कल्पना कर सकते है? वायु ही शरीर में रक्त शुद्धि का कार्य करने के साथ रक्त परिभ्रमण में मुख्य सहायक होता है।

फिर जल तो जीवन ही है। हमारे में दो तिहाई अंश जल का ही है।

इन सब प्राकृतिक पदार्थो को वैदिक वाङ्मय में इसलिए देवता कहा गया कि ये सब हम को कुछ न कुछ देते ही रहते हैं। साथ ही इनमें से कुछ प्रकाश और कुछ हमें कार्य करने के लिए ऊर्जा शक्ति प्रदान करते है। पर्यावरण प्रदूषण भी इसीलिए होता है कि हम इन्हें लगातार अशुद्ध करते रहते हैं। यज्ञ के द्वारा इनके ऋण से हमको मुक्ति प्राप्त होती है क्योंकि यज्ञ में आहूत किये गए पदार्थों से वायु मण्डल में सुगन्ध फैलती है तथा यज्ञ में डाले पदार्थों के द्वारा वायु में स्थित रोगाणुओं का नाश होता है। मेघों में स्थित जल भी इससे सुगन्धित होकर वर्षा करता है। सभी प्राकृतिक शक्तियों को यज्ञ से लाभ पहुंचता है! अथर्ववेद में ऋणाद् विमोचन सूत्रों में बताया गया है कि हम इन ऋणों से कैसे मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। हम इस विषय में अथर्ववेद के मंत्रों से ही चर्चा कर रहे हैं।

अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिता चरामि।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान्।।

पदार्थ– (यमस्य) नियम करने वाले (ऋणदाता) के (अप्रतीत्तम्) बिना चुकाये (यत्) जिस (अपमित्यम्) अपमान में हेतु ऋण को (अस्मि) मैं ग्रहण करता हूँ और (येन) जिस (बलिना) बलवान् के साथ ऋण लेकर (चरामि) मैं चेष्टा करता हूँ। (इदम्) अब (तत्) उससे (अग्ने) हे विद्वान्। मैं (अनृणः) ऋण रहित (भवामि) हो जाऊँ। (त्वम्) तू (सर्वान्) सब (पाशान्) बन्धनों को (विचृतम्) खोलना (वेत्था) जानता है। भावार्थ–जिज्ञासु विद्वान से पूछता है कि किसी बलवान् का ऋण नहीं अदा करने पर अपमान सहन करना पड़ता है। मुझे यह अपमान ग्रहण करना पड़ रहा है, मैं चाहता हूं कि मुझे ऋणों से मुक्ति मिल जावे। आप मनुष्यों को ऋण के बन्धन से, अपने उपदेश द्वारा सत्य मार्ग दिखाकर, मुक्त करा देते हैं। कृपया मुझे भी वह मार्ग बता दें।

इहैव सन्त प्रति दद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत्।
अपमित्य धान्यं यज्जघसाहमिदं त्दग्ने अनृणोभवामि।।

पदार्थ– (इह) यहाँ (इस शरीर में) (एवं) ही (सन्तः) रहते हुये हम (एनत्) इस ऋण को (प्रति दद्मः) चुका देवें। (जीवाः) जीवित रहते हुए हम (जीवेभ्यः) जीते हुए पुरुष को (एनत्) इस ऋण (नि) को नियम से (हरामः) दे देवें। (यत्) जो (धान्यम्) धान्य (अपमित्य) उधार लेकर (अहम्) मैंने (जघस) खाया है, (अग्ने) हे विद्वान्। (इदम्) अभी (तत्) उससे मैं (अनृणः) अऋण (भवामि) हो जाऊँ। भावार्थ–हमारा प्रारम्भिक जीवन माता पिता के दिये हुए अन्नादि साधनों से ही आगे बढ़ा है। अतः हम उनके ऋणी हैं। इस ऋण को हमें जीवित रहते ही अदा कर देना है। एक तो हम अब कम से कम उतने वर्ष तो उनकी सेवा विनीत रह कर करें जितने वर्षों तक उन्होंने हमारा पालन पोषण किया है परन्तु यह तो मूल ऋण चुकाने के समान है। ब्याज के रूप में वह जब तक जीवित रहें हम उनकी सेवा करते रहें। साथ ही जैसे उन्होंने हमें जन्म देकर और योग्य बनाकर प्रतिष्ठा दिलाई है वैसे हम भी योग्य सन्तान को जन्म देकर वंश को आगे बढ़ावें। वेद में कहा गया है कि संसार में वह परिवार आगे बढ़ता है जिसमें ऐसी योग्य सन्तान उत्पन्न होती है जो कार्य का आरम्भ उस स्तर से ऊपर के स्तर पर करती हैं जहाँ पिता ने छोड़ा हो।

अनृणा अस्मिन्ननृणः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम्।
ये देवयानाः पितृ याणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम।।

पदार्थ– हम (अस्मिन् लोके) इस लोक (बालक पन) में (अनृणाः) अऋण (परस्मिन्) दूसरे (युवापन) में (अनृणाः) अऋण और (तृतीये) तीसरे (बुढ़ापे) में (अनृणाः अऋण (स्याम) होवें। (देवयानाः) विजय चाहने वाले और व्यापारियों के यान (च) और (पितृयाणः) हम अऋण होकर (आ) सब ओर से (क्षियेम) चलते रहें।

भावार्थ–मनुष्य ब्रह्मचर्य बाश्रम में विद्या अभ्यास में बालकपन का ऋण, गृहस्थ आश्रम में धन और प्रजा पालन आदि की सफलता से युवावस्था का ऋण और वानप्रस्थ व सन्यास आश्रम के सेवन से बुढ़ापे का ऋण चुकाकर सन्तों के समान परोपकारी बने।

आचार्य अथवा ऋषि ऋण चुकाने के लिए हमें स्वाध्याय–शील बनना चाहिए। आचार्यो की श्रद्धापूर्वक सेवा करनी चाहिए तथा उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान का प्रचार–प्रसार करना चाहिए। यदि कभी प्रमादवश हमारे द्वारा आचार्य का अनादर हो जावे तो हमें तुरन्त उनसे क्षमा याचना करनी चाहिए। अथर्ववेद में कहा गया है–

यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्।
आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्मेन मुञ्चत।
अथर्व. 6.114.1

पदार्थ– हे (देवाः) विद्वानों। (देवासः) खेल करते हुए (वयम्) हम लोगों ने (यत्) जो (देव हेडनम्) विद्वानों का अनादर (चकृम) किया है। (आदित्याः) हे सूर्य समान तेजस्वी। (यूयम्) आप लोग (तस्मात्) उस (पाप) से (नः) हमको (ऋतस्य) धर्म के (ऋतेन) सत्य व्यवहार द्वारा (मुञ्जल) छुड़ाओ।

भावार्थ– यदि मनुष्यों से प्रमाद के कारण विद्वानों का अनादर हो जावे तो उनको योग्य है कि वे धार्मिक व्यवहार करके विद्वानों को प्रसन्न करें।

आचार्य को प्रसन्न करने सर्वश्रेष्ठ उपाय यह है कि हम विद्या से होने वाले उपकारों को ध्यान में रखकर निरन्तर स्वाध्याय, चिन्तन मनन करते रहें। अथर्व. 4.21 तो विद्या का ही गान करता है फिर अथर्ववेद काण्ड 5 सूक्त 16 से 19 तक ब्रह्म विद्या पर ही विचार हैं। विद्या की शक्ति का वर्णन निम्न मंत्र में है–

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिद् श्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्र वाचो बृहद् वो वय उच्चते समासु।। अथर्व. 4.21.6

पदार्थ– हे विद्याओं। तुम दुर्बल से भी, श्री रहित निर्धन से भी स्नेह रखती हो और उन्हें बड़ा प्रीति वाला बना देती हो। हे कल्याणी विद्याओं तुम घर को मंगलमय कर देती हो। विद्वानों के द्वारा बड़ी प्रकाशमय सभाओं में तुम्हारी ही प्रशंसा की जाती है।

विद्या ही सबसे बड़ा धन है। वही परम ऐश्वर्य है। अथर्ववेद कहता है–

गावो भगो गावः इन्द्रो म इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छमि हृदा मनसाचिदिन्द्रम्।। अथर्व. 4.21.5

पदार्थ– विद्या ही धन हैं। विद्याएं ही परम् ऐश्वर्य हैं। विद्याएँ अति श्रेष्ठ मोक्ष का साधन हैं यह मेरी इच्छा हो। हे मनुष्यों ये जो विद्याएँ हैं ये परम ऐश्वर्य हैं। परम ऐश्वर्य की मैं हृदय और मन से कामना करता हूँ।

विद्याध्ययन, उसके आधार पर जीवन व्यापन और विद्या का प्रचार प्रसार करके हम आचार्य या ऋषि ऋण से मुक्त हो सकते है। पितृ ऋण से मुक्त होने का साधन पितृ श्राद्ध और पितृ तर्पण हैं इनके विषय में अथर्ववेद काण्ड 18 सूक्त 2,3 व 4 में पर्याप्त विवरण है। कभी कभी हमें किसी श्रेष्ठ कार्य के सम्पादन में सांसारिक अन्य मनुष्यों से भी अर्थ ऋण लेना पड़ जाता है। उसे भी शीघ्रता से अदा कर देना चाहिए अन्यथा उसके द्वारा समाज में हमें अपमान सहन करना पड़ेगा। इसलिए अथर्ववेद कहता है–

उग्रं पश्ये राष्ट्र भृत किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत्।
ऋणान्नों नर्णमेत्समानो यमस्य लोके अधिज्जुरायत्।। अथर्व. 6.118.2

पदार्थ– (उग्रम् पश्ये) हे तीव्र दृष्टि वाली। (राष्ट्रभृत) हे राज्य के पालने वाली। (सूर्य और पृथ्वी) (किल्बिषाणि) हमारे अनेक पाप हैं। (यत्) जो (अक्षवृत्तम्) इन्द्रियों का सदाचार है (एतत्) वह (नः) हमें (अनु) अनुग्रह करके (दत्तम्) तुम दोनों दान करो। (ऋणात् ऋणम्) ऋण के पीछे ऋण के (एर्त्समानः) लगातार बढ़ाने की इच्छा करता हुआ (अधिरज्जुः) रसरी लिए हुए (उधार देने वाला) (यमस्य) न्यायाधीश के (लोके) समाज में (नः) हमको (आ) आकर (न) न (अयत्) प्राप्त हो।

यस्य ऋणं यस्य जायामुपैमि य याचमानो अभ्यैमि देवाः।
ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देव पत्नी अप्सरसावधीतम्।। अथर्व. 6.118.3

पदार्थ– हे (देवाः) विद्वानों। (यस्यै ऋणम्) जिसका मुझ पर ऋण है (यस्य) जिसकी (जायाम्) स्त्री के पास (उपैमि) मैं जाऊँ अथवा (याचमानः) अनुचित मांगता हुआ मैं (यम्) जिसके पास (अभ्यैमि) पहुचूँ। (ते) वे लोग (मत्) मुझसे (उत्तराम्) बढ़कर (वाचम्) बात (मा, वादिषुः) न बोलें, (देव पत्नी) हे दिव्य पदार्थो की रक्षा करने वाली (अप्सरसौ) आकाश में चलने वाली सूर्य और पृथ्वी। (आधतिम्) यह बात स्मरण रखो।

भावार्थ– संसार में यह स्मरण रखें कि ऋण लेने, व्यभिचार करने और अनुचित याचना करने से प्रशंसा में बट्टा लगता है। इति।

73, शास्त्री नगर दादाबाड़ी
कोटा (राजस्थान) 324009

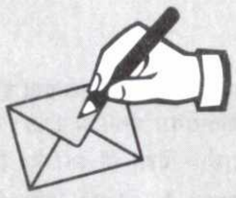

पत्र/कविता

दोहे

ईश मेरे मैं बह चलूं, तुझ अनन्त की ओर।
इस चातक की मिट सके, प्यास तेरे ठोर।।

तू तो मेरे निकट है, पर मैं तुझसे दूर।
मैं मूरख समझूं नहीं, समझाता भरपूर।।

अपनी किस्मत के लिये, काहे कोसें तोय।
जैसे जिसके करम हैं, वैसे ही फल होय।।

करमों का जो फल मिले, वह किस्मत कहलाय।
जब हों करम लेखनी, क्युँ पढ़कर पछताय।।

मैं और मेरा ईश्वर, दोनों भीतर साथ।
मैं भटकता बाहर फिरूं, छोड़े उसका हाथ।।

भीतर बैठा देखता, हर पल ही समझाय।
पर मन स्वार्थ से भरा, कुछ समझ नहीं पाय।।

कर्म तेरे ही ले चलें, तुझे मंजिल की ओर।
दशा, दिशा पहचान चल, पावे अपना ठोर।।

विचारों से शब्द बने, शब्द करम बन जाय।
सोच अपनी सुधार ले, करम सुधर तब पाय।।

मन में स्वार्थ भाव हो, करम अधम बन जाय।
पर उपकार अगर करो, गति उत्तम कहलाय।।

प्रेम सेवा से करो, चलो ईश ओर।
कार्य नफरत के करो, कभी मिले ना ठोर।।

नरेन्द्र आहूजा विवेक
602ए जी.–53, सैक्टर–20,
पंचकुला (हरियाणा)

वेदो में इतिहास नहीं है

चूँकि वेद सृष्टि के आरम्भ में प्राप्त ईश्वरीय ज्ञान है, इसलिए वेदों में लौकिक इतिहास संम्भव नहीं हैं। वेदों में जो लौकिक इतिहास भासित होता है, उसके दो क़ारण हैं। पहला कारण तो यह है कि वेदों के शब्दों को लेकर ही संसार के मनुष्यों एवं पदार्थों का नामकरण किया गया, जैसा कि मनु का यह कथन है

सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक्–पृथक्।
वेदशब्देभ्यः एवादौ पृथक् संस्था च निर्ममे।।
मनु. (1/21)

अर्थात् आदि में वेद के शब्दों को लेकर ही सभी पदार्थों के नाम एवं कर्म की पृथक्–पृथक् संज्ञा दी गई। इसलिए यदि वेदों में किसी व्यक्ति या नदी आदि का नाम दीखता है तो इसका अर्थ यह नहीं कि उस व्यक्ति या नदी आदि का इतिहास उसमें लिखा है, बल्कि उससे यह ध्वनित होता है कि वेदों के उन शब्दों से व्यक्ति या नदी आदि का नामकरण किया गया है। उदाहरण के लिए मेरा नाम सूर्य है और वेदों में भी सूर्य शब्द है। इसका अर्थ यह नहीं है कि मेरा इतिहास वेदों में है, बल्कि यह अर्थ है कि वेद के सूर्य शब्द को लेकर मेरा नामकरण किया गया है। ऐसा ही सर्वत्र समझना चाहिए। इस सम्बन्ध में वेद भी यही कहते हैं–**'देवो देवानाम् गुह्यानि नाम ऽऽ विष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे** (ऋ9/95/2) अर्थात् परमात्मा ने भूमि आदि की उत्पत्ति के साथ–साथ लोक में उनके सारे नाम प्रकट किए। मीमांसकों के इस कथन **'य एवं लौकिकास्स एवं वैदिकाः'** का तात्पर्य भी यही है कि लोक में जो प्रचलित शब्द हैं वेदों से आए हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि वैदिक शब्दों की आनुपूर्वी नित्य होती है और वे अर्थ की दृष्टि से व्यापक होते हैं, जबकि लौकिक शब्दों की आनुपूर्वी अनित्य होती है ,वे संकुचित अर्थ में होते हैं।, उदाहरण के लिए वैदिक शब्द अश्व एवं अप्सरा लोक में भी प्रचलित हैं। लौकिक शब्दों अश्व से जहाँ घोड़ा नामक पशु का ही बोध होता है, वहीं वैदिक शब्द अश्व **'आशु गच्छति इति अश्वः'** के अनुसार विद्युत्, किरण, घोड़ा, यान आदि सभी शीघ्रगामी पदार्थों का बोध कराता है। इसी तरह लौकिक शब्द अप्सरा से जहाँ केवल नृत्यांगना का बोध होता है, वहीं वैदिक शब्द अप्सरा **'अप्सु सरन्ति इति अप्सरा विद्युत्'** के अनुसार जल में संचरण करने वाली विद्युत् का बोध कराने के साथ ही प्रकरण के अनुसार जल में संचरण करनेवाले अन्य पदार्थों का भी बोध करा जाता है। इस तरह वेदों में आगत शब्दों के बारे में जो व्यक्ति इस तथ्य को समझ लेता है, वह वेदों में इतिहास खोजने में अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाएगा।

वेदो में इतिहास भासित होने का दूसरा कारण यह है कि वेद के शब्दों को रुढ़ि मान लिया जाता है जबकि वे यौगिक या योगरुढ़ि होते हैं, रुढ़ि नहीं। यौगिक का अर्थ यह है कि किसी शब्द के मूल धातु के अर्थ के आधार पर व्युत्पत्ति परक उस शब्द का अर्थ लिया जाएगा, केवल शब्द के बाह्य स्वरुप को देख कर नहीं। जिस प्रकार किसी फल को देखकर उसके मिढास या खठास का ज्ञान नहीं हो पाता है, उसे छीलकर, काटकर एवं खाकर ही उसके गुणों को जाना जा सकता है, उसी प्रकार किसी शब्द के अन्दर तक पहुँचे बिना उस शब्द का सही अर्थ नहीं जाना जा सकता है। चूँकि वेद के प्रतयेक शब्द का अर्थ उस शब्द के अन्दर ही निहित है, इसलिए शब्द के अन्दर घुसकर ही उस शब्द के अर्थ जानने की यही प्रक्रिया यौगिक प्रक्रिया कहलाती है। पतंजलि, यास्क, वररुचि, आचार्य कुमारिल भट्ट, शौनक आदि प्राचीन ऋषियों एवं वेदज्ञ विद्वानों ने इस यौगिक प्रक्रिया को स्वीकार किया है। इसलिए यह कोई नवीन पद्धति नहीं, बल्कि वेदार्थ जानने के लिए प्रचलित विधि है। सायणाचार्य ने भी वेदों के शब्दों को यौगिक ही माना है, परन्तु वेदार्थ करते समय उन्होंने इसे विस्मृत करके वेदों में अनित्य इतिहास–वर्णन दिखलाए हैं। आज के अधिकांश विद्वान सायणाचार्य को ही प्रमाण मानकर वेदों में अनित्य इतिहास मानते या खोजते हैं जो कि गलत है। यदि हम वेदों के शब्दों को प्राचीन ऋषियों की तरह यौगिक मान लेते हैं, तो वेदों में अनित्य इतिहास होने का विवाद स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

सूर्य देव चौधरी
झारखंड राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा राँची
मो. 09470587322

****

भारतीय भाषा की उपेक्षा क्यों

देश के समस्त धर्मो को विभिन्न प्रदेशों के एक सौ बीस करोड़ नागरिक महामहिम राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी जी से आशा एवं विनती करते हैं कि वह देशवासियों के नाम जो संदेश प्रसारित करें वह हिन्दी या बंग्ला भाषा में ही हो जो सर्व साधारण की भाषा है।

यह तो सर्वविदित है कि देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी ने राष्ट्पति के कार्य काल में कभी भी अग्रेंज़ी भाषा का प्रयोग नहीं किया। इजरायल दश के प्रत्येक राजनैतिक पदाधिकारी को केवल हिब्र, भाषा के प्रयोग की अनुमति है। चीन,रुस आदि देशों के राजनयिक भी सदैव अपने देश भी भाषा का ही प्रयोग करते हैं।

यह भी सौहार्द, का विषय है कि महामहिम अपने लोकसभा के 35 वर्षो के दौरान अधिकांशतः हिन्दी भाषा का ही प्रयोग करते थे।

यह भी विदित है कि नवनिर्वाचित महामहिम अपने जीवन में सदैव भारतीय संस्कृति के अनुयायी रहें हैं तथा भारतीय संस्कृति को ही सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करते हैं।

विश्वास है कि एक सौ बीस करोड़ देश वासियों की विनती को स्वीकार करेंगे हमारे महामहिम माननीय श्री प्रणव मुखर्जी जी!

कृष्ण मोहन गोयल
113– बाजार कोट–अमरोहा

****

thearyasamaj.org

☞ पृष्ठ 05 का शेष

विचारों की उथल-पुथल ...

निश्चलं भवेत्।

परन्तु मन तो एक नटखट, चंचल बालक की तरह है। जब बालक को एक नया खिलौना दे दिया जाता है तो वह सब प्रकार की शरारतें छोड़ उसके साथ खेलने में मस्त हो जाता है। कुछ समय के उपरान्त, उस खिलौने से ऊब कर उसे फैंक देता है और फिर शरारतें करने लगता है। यही अवस्था हमारे मन की है। जब हम एक ही शब्द, मन्त्र या भजन की एक पंक्ति का जप करते रहते हैं तो ध्यान बिखरने लगता है और हम यन्त्रवत ही जप करते हैं। मन जप में नहीं रहता। मन को वापिस लाने का एक सरल उपाय है। मन को जाप के लिए नया शब्द/मन्त्र दें। प्रभु के अनन्त गुण-कर्म स्वभाव हैं अपनी-2 एकाग्रता के अनुसार, अपनी ही सहज भावना से अपने शब्दों में किसी एक गुण, कर्म, स्वभाव का अर्थ सहित चिन्तन करें जैसे ओ३म्... ओ३म्... ओ३म्... जब मन भागने लगे तो ओ३म् आनन्दम् आनन्दम्... पर मन की सुई को टिका दें। इसी प्रकार ओ३म् निराकार... ओ३म् निराकार... ओ३म् सर्वशक्तिमान, ओ३म्...सर्वशक्तिमान आदि-2। कहाँ तक भागेगा यह मन!

ईश्वर हम पर कृपा करे। हम विवेक, वैराग्य और अभ्यास के द्वारा मोक्ष के पथ पर अग्रसर हों।

ओ३म् आनन्दम् ओ३म् आनन्दम्।
ओ३म् आनन्दम् ओ३म् आनन्दम्।

आर्य समाज मॉडल टाऊन यमुनानगर

☞ पृष्ठ 08 का शेष

हमारा मित्र

आश्चर्य चकित होता हूँ। स्वयं से ही पूछता हूँ कि क्या मैं ऐसा कर पाता? ईश्वर के प्रति एकान्त निष्ठा व कर्त्तव्य के प्रति जागरुकता ईश्वर कृपा का ही फल है, ऐसा मानना है और यही पत्नि श्रीमती स्वदेश ने करके दिखलाया। कर्त्तव्य-कर्म, पूर्ण विचार के बाद स्थिर करना यदि ईश्वर में आस्था का परिणाम नहीं है तो और क्या है?

अन्य घटनाओं से लेख का कलेवर नहीं बढ़ाना चाहता। महर्षि मानते हैं कि ईश्वर सहायता करता है पर कब? जब पूर्ण पुरुषार्थ करने पर भी किसी कठिन समस्या का निराकरण न हो रहा हो, तभी प्रार्थना करने पर वह अवश्यमेव सहायता करता है। कोई हल सुझाता है। किसी मित्र., सगे-संबंधित को भेज देता है। कोई न कोई ऐसा बाना बना देता है, जिससे आपका काम बन जाए और काम न होने वाला हो तो संतोष प्रदान करता है। बस जरुरत धैर्य की और विश्वास की। उस पर विश्वास की कमी ही हमें इधर-उधर भटकाती है। और यही कमजोरी अमरनाथ तिरूपति बालाजी, सोमनाथ जी व वैष्णोंदेवी व शिरडी आदि अन्य अनेक तीर्थो पर भटकन का कारण है। मैं इसे आस्था की पूर्ति हेतु यात्रा नहीं मान सकूँगा क्योंकि आस्था भटकाती नहीं, आश्रय देती है।

से.नि. वरिष्ठ लेखाधिकारी (केन्द्र)
22, नगरनिगम क्वार्टर्स, जीवाजीगंज
लश्कर ग्वालियर 474001 (म.प्र.)

आत्मा को ले जाने के पाखण्ड का आर्य समाज ने किया विरोध जिला क्लेक्टर को सौंपा ज्ञापन, पाबन्दी लगाने का अनुरोध

आर्य समाज जिला सभा कोटा द्वारा अस्पतालों एवं सार्वजनिक स्थानों पर टोने टोटके कर अंधविश्वास को बढ़ावा देने वाले कार्यों पर रोक लगाने के लिए जिला कलेक्टर महोदय कोटा का ज्ञापन सौंपा गया।

आर्य समाज का एक प्रतिनिधि मण्डल जिला प्रधान अर्जुनदेव चढ़ा की अगुवाई में जिला कलेक्टर को उनके कार्यालय में मिला और उन्हें ज्ञापन सौंपा।

सौंपे ज्ञापन में उल्लेख किया गया कि एमबीएस अस्पताल कोटा में भीलवाड़ा से आकार कुछ लोग टोने टोटके करने लगे। पूछने पर बताया कि वे यहां अपने परिवार के पूर्व में मृत सदस्य की भटकती आत्मा को लेने आये हैं। यह देखकर अस्पताल में भर्ती मरीज एवं उनके परिजन भयभीत हो गये।

जिला प्रधान अर्जुनदेव चढ़ा ने कहा कि यह किसी संगठित गिरोह का कार्य है जो भोलेभाले लोगों को दिग्भ्रमित कर अनहोनी का भय दिखा आडम्बर रचकर अंधविश्वास को फैला रहा है और लोगों का आर्थिक, शारीरिक एवं मानसिक शोषण कर रहा है इसकी जांच की जानी चाहिए और ऐसे गिरोह के विरुद्ध कार्यवाही की जानी चाहिए।

वैदिक विद्वान आचार्य अग्निमित्र का कहना है कि वेदों तथा उपनिषदों में इस प्रकार आत्माओं को ले जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है इसलिए लोग भ्रम से बचें व ऐसे लोगों के बहकावे में नहीं आवें।

आर्य समाज के शिष्ट मण्डल की बातों को जिला कलेक्टर ने बड़े ध्यान से सुना और कहा कि लोगों की यह मानसिकता बदलने की आवश्यकता है।

बजवाड़ा में मनाई गई महात्मा हंसराज जयन्ती

डी.ए.वी. संस्थाओं के संस्थापक, शिक्षाविद् महात्मा हंसराज जी का 150वाँ जन्मदिवस 19-7-2014 को उनके पैतृक गाँव बजवाड़ा (होशियारपुर) में बड़ी श्रद्धा से और सोल्लास मनाया गया, जिसमें विभिन्न डी.ए.वी. संस्थाओं से आये प्रिंसिपलों, अध्यापकों, अध्यापिकाओं छात्रों-छात्राओं तथा तथा बजवाड़ा के प्रतिष्ठित लोगों ने बहुसंख्या में भाग लिया। विश्वेरानन्द की ओर से इस समारोह में प्रो.इन्द्रदत उनियाल, डॉ. देवराज शर्मा, श्री श्रीकान्त, श्री बृजमोहन तथा श्री राकेश कुमार ने भाग लिया।

सर्वप्रथम इस अवसर पर हवन-यज्ञ किया गया। तत्पश्चात् डॉ. नीलम कामरा, अमृतसर ने अपने संबोधन में डी.ए.वी संस्थाओं की उन्नति और आगामी कुछ दिनों में होने वाले आयोजनों की जानकारी दी। उसके बाद एडवोकेट सुदर्शन कपूर, अमृतसर ने अपने और अपने परिवार के आर्य समाज में प्रवेश के बारे में जानकारी दी और अपना पूर्ण सहयोग देने की बात कही। तदनन्तर डायरैक्टर स्कूलज् जे. पी. शूर, दिल्ली, ने अपने संबोधन में आर्य संस्थाओं में कार्यरत सभी लोगों को निस्स्वार्थ भाव तथा ईर्ष्या-द्वेष से रहित हो कर अपनी मातृसंस्था आर्यसमाज को तन-मन-धन से उन्नत और आगे ले जाने में योगदान देने का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि श्री पूनम सूरी प्रधान, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री सभा, ने इच्छा व्यक्त की कि बजवाड़ा में प्रतिमास कोई एक स्कूल हवन यज्ञ करने के लिए अपना योगदान दिया करे।

समारोह के अन्तिम पड़ाव में भजनों का बड़े ही मधुर स्वर और भक्तिभाव से गायन किया गया और इन धार्मिक भजनों से सभी उपस्थित सज्जन भाव-विभोर हो गये। अन्त में प्रिं. के एन. कौल, अमृतसर ने इस समारोह में उपस्थित सभी सज्जनों का यहाँ पधारने के लिए हार्दिक धन्यवाद किया।

इस सफल कार्यक्रम का आयोजन प्रिं परमजीत कुमार, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल अटारी (अमृतसर) ने बड़े ही सुन्दर और सुव्यवस्थित ढंग से किया, जिस की सभी वक्ताओं ने सराहना की और इसके लिए उन्हें साधुवाद दिया। तत्पश्चात् शान्तिपाठ किया गया और सभी के लिए प्रसाद और भोजन का प्रबन्ध किया गया।

thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अ ायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 20-21/8/2014
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

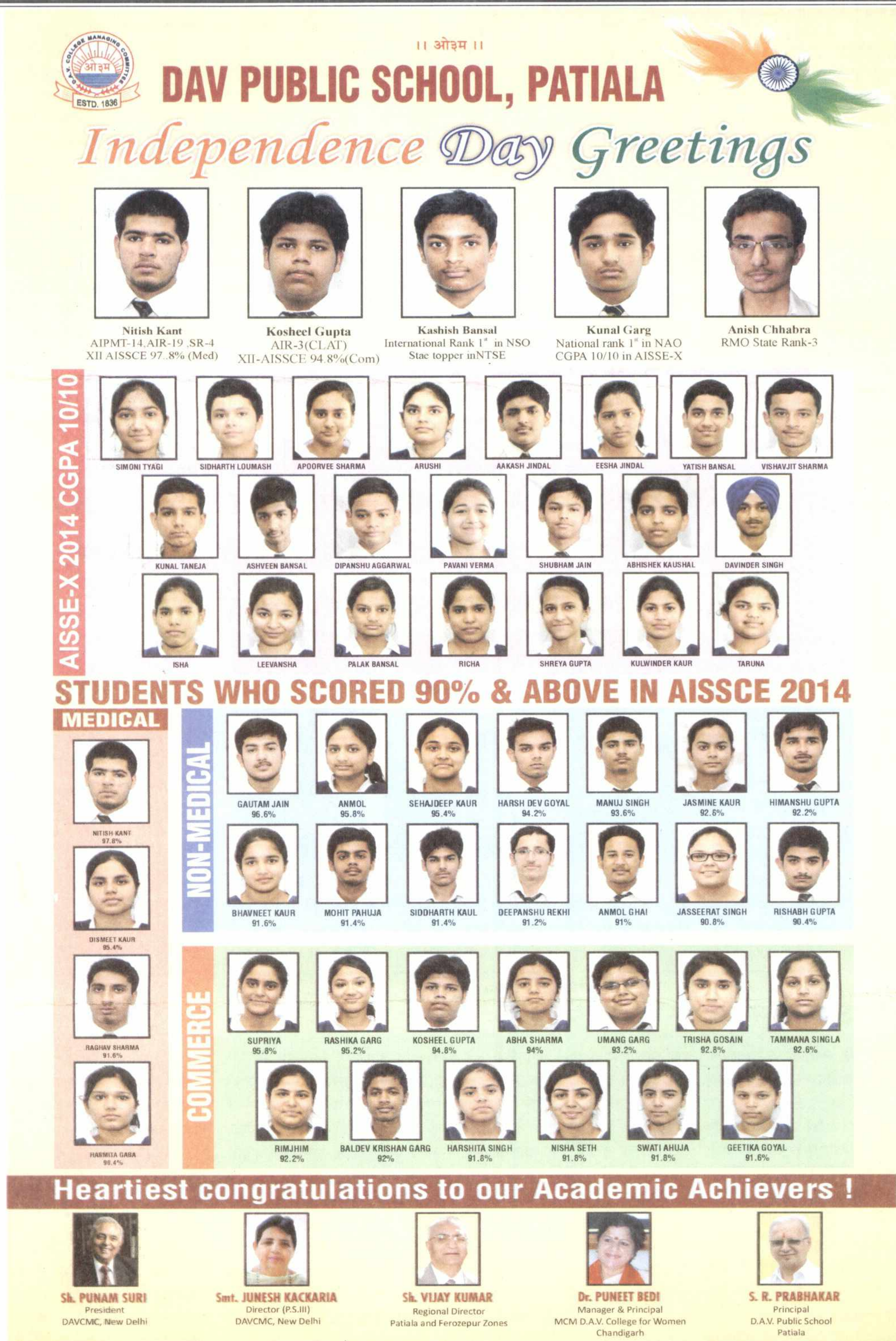

मुद्रक व प्रकाशक – **श्री प्रबोध महाजन,** सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**